सहजानंद शास्त्रमाला

पंचाध्यायी प्रवचन

भाग 7

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

पञ्चाध्यायी प्रवचन

[सप्तम भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

ननु सर्वतो नयास्ते किं नामानोथ वा कियन्तश्च ।
कथमिव मिथ्यार्थास्ते कथमिव ते सन्ति सम्यगुपदेश्याः ॥५८८॥

नयोंके नाम, प्रकार, नयाभासत्वविधि आदिकी जिज्ञासा—अब यहाँ जिज्ञासु नयके सम्बन्धमें बहुत सी बातें जानना चाहता है, उसकी पहिली जिज्ञासा यह है कि समस्तनयोंके नाम क्या क्या होते हैं, याने नय किस किस नाम वाले होते हैं और वे सब नय कितने हैं। यह दूसरी जिज्ञासा है कि वे सब नय कितने हैं। तीसरी जिज्ञासा है कि वे नय किस तरह मिथ्या नयको विषय करने वाले हो जाते हैं और कैसे वे यथार्थ अर्थको विषय करने वाले होते हैं? पहिली जिज्ञासाका भाव यह है कि नयोंके सम्बन्धमें अभेद द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक या व्यवहारनयके भेदमें सद्भूत असद्भूत आदिकरूपसे कहा गया है और ऐसी भी ध्वनियाँ आयी हैं कि इससे भी और अधिक नय होते हैं। तो यह जिज्ञासा होना प्राकृतिक है कि वह नय किस किस नाम वाला हुआ करता है। नामके बिना विषयका कुछ परिचय नहीं हो पाता, नामके बिना उसका व्यवहार तक भी नहीं हो सकता। इसलिए नामकी जिज्ञासा होना सर्व प्रथम बात है। दूसरी जिज्ञासा यह हुई कि ऐसे नय आखिर होते कितने हैं? किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें उनकी सख्याकी जानकारी हो तो उससे परिचय स्पष्ट हो जाता है। लौकिक पदार्थोंमें भी पदार्थोंके परिज्ञानके साथ साथ उनकी संख्याका चाहे अंदाजा हो, चाहे बिल्कुल ठीक हो, संख्याका परिज्ञान होता ही है। जैसे जीव पदार्थ का स्वरूप जानने वाले लोग जीवके ठीक स्वरूपका भान तब ही कर पा रहे हैं जब कि उनकी संख्याका भी परिज्ञान है। जीव अनन्तानन्त होते हैं तो अनन्तानन्त रूपसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अथवा अनेक रूपसे जीवकी संख्याका परिज्ञान है तब जीवके स्वरूपका परिचय भी स्पष्ट है । तो वे नय कितने हैं ऐसी उनकी संख्याके परिचयकी जिज्ञासा भी युक्ति-सङ्गत है । जिज्ञासुकी तीसरी जिज्ञासा यह है कि नय तो प्राय: एक ही लक्षण वाले हैं, जो अंशको ग्रहण करे सो नय है, फिर इन नयोंमेंसे कोई नय सम्यक हो जाता है कोई मिथ्या हो जाता है ऐसी उनमें समीचीनता और असमीचीनताका कारण क्या है अर्थात् वे सब नय कैसे ठीक २ कहे जाते हैं और कैसे वे विरुद्ध माने जाते हैं? इन तीन जिज्ञासाओंका समाधान करनेके लिए अब गाथा कहते हैं ।

सत्यं यावदनन्ता: सन्ति गुणा वस्तु तो विशेषाख्या: ।
यावन्तो नयवादा वचोविलासा विकल्पाख्या: ॥५८६॥

नयोंके भेदोंका प्रतिपादन—इस गाथामें जिज्ञासुकी प्रथम दो जिज्ञासाओं का समाधान किया गया है । इसमें प्रथम दूसरी जिज्ञासाका समाधान जाननेके बाद उनके नामकी जिज्ञासा आसानीसे समाधानमें आ जाती है, वस्तुमें जितने भी गुण हैं उतने ही नयवाद होते हैं । और जितनी भी वचन विवक्षायें हैं वे सब नयवाद ही तो कहलाती हैं इससे समझना चाहिए कि नयोंकी संख्या बंध नहीं सकती क्योंकि प्रत्येक गुणको विषय करने वाला नय अपने आपमें विशेष दृष्टिसे स्वतन्त्र है, ऐसे कितने प्रकार नयोंके हो सकते हैं ? तो कहना चाहिए कि जितने विस्तारमें गुण हैं उतने ही नय हो सकते हैं, तो गुणोंसे परिज्ञानके आधारपर नयोंकी संख्या बतायी गई है इसी प्रकार वचन विकल्पोंके आधार पर भी नयोंकी संख्या बतायी गई है । कारण यह है कि जो विकल्पात्मक हो सो ही तो नय हो सकता है । विशेष गुणोंका परिज्ञान होना यह भी विकल्प है, भेदीकरण है और वचनके जो विकल्प हैं वे भी विकल्प हैं और भेद रूप हैं । तो यों जितने भी गुण हैं उतने नय हो सकते हैं । और जितने वचनोंकी विवक्षा है उतने नय हो सकते हैं । तब समझ लेना चाहिए कि नय भी उतने ही नाम वाला है । गुणोंका सबका परिचय तो हो नहीं सकता, क्योंकि उनका प्रतिबोध करने वाले वचन भी नहीं हैं केवल ज्ञानीके ज्ञानमें अनन्त गुणोंका प्रतिभास है तो वहाँ वचन नहीं है, निर्विकल्प प्रतिभास है । और जहाँ वचन विकल्प हैं ऐसे बड़े बड़े ज्ञानियोंके यहाँ भी अनन्त नाम स्पष्ट नहीं हैं । वहाँ भी वचन विकल्प जितने हैं उतनी ही शक्तियोंका परिचय है । जितनी शक्तियोंका परिचय है उतना ही वचन विलास है । तो संक्षेपमें इतना समझ लेना चाहिए कि जिस गुणका निर्देश करने वाला जो नय है वह नय उस गुणके नाम वाला बन जाता है । तो कितने नाम कहे जायें ? वे सभी नाम कहे नहीं जा सकते और न बोधमें आ सकते । जितने गुण स्पष्टरूपसे परिचयमें है उन गुणोंके नामसे उतने नय कहे जा सकते हैं । यों दो जिज्ञासाओंका समाधान है कि नयोंके वे वे नाम हैं जिन जिनको नय विषय करते हैं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और दूसरी जिज्ञासाका समाधान यह हुआ कि नय उतने हैं जितने कि वस्तुमें गुण हैं और जितनी वचनकी विवक्षायें हो सकती हैं।

अपि निरपेक्षा मिथ्यास्त एव सापेक्षका नयाः सम्यक् ।
अविनाभावत्वे सति सामान्य विशेषयोश्च सापेक्षात् ।।५६०।।

निरपेक्ष नयोंमें मिथ्यापनकी व सापेक्ष नयोंमें सम्यक्पनकी घोषणा— इस गाथामें जिज्ञासुकी तीसरी जिज्ञासाका समाधान दिया गया है। जिज्ञासा यह थी कि नय कैसे तो मिथ्या अर्थको विषय करने वाला हो जाता है और कैसे यथार्थ पदार्थको विषय करने वाला हो जाता है ? समाधान इसका यह दिया गया है कि जो निरपेक्ष नय है वह मिथ्या होता है और जो सापेक्षनय है वह यथार्थ होता है। ऐसा होनेका कारण यह है कि सामान्य और विशेष इन दोनोंका अविनाभाव है और वस्तु प्रत्येक सामान्य विशेषात्मक होती है। तो सामान्य विशेषात्मक वस्तुमेंसे यदि विशेषको जाना जा रहा है और वह जानना निरपेक्ष कर दिया जाय अर्थात् केवल विशेष ही मात्र रह जाय तो वह मिथ्या हो जायगा, क्योंकि वस्तु मात्र विशेषरूप ही नहीं है, वह सामान्य विशेषात्मक है, इसी प्रकार कोई सामान्यका परिज्ञान करे और इस तरह परिज्ञान करे कि एक सामान्य ही है वस्तुमें यह आग्रह बना लें धारणा संस्कारमें भी यह बात नहीं होती कि विशेष भी स्वरूप है तब यह नय मिथ्या हो जायगा। तो नय मिथ्या होते हैं तब वह निरपेक्ष बन जाता है। वस्तुमें जिस धर्मका प्रतिपादन किया जा रहा है उसके अन्दर जो अनन्त धर्म हैं उनकी जब अपेक्षा नहीं रहती तो वह कथन मिथ्या हो जाता है। यहाँ इतना स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि तद्गुणको कहने वाला नय हो तब वह नय कहलाता है और गुणके नामपर उसका नाम होता है। उनमेंसे निरपेक्ष अवस्थामें वह विवेचन एकान्त रूप पड़ जाता है और अन्य अंशका निषेध बन जाता है और पदार्थ केवल उतना है नहीं जितना कि निरपेक्ष अवस्थामें जाना है। इस कारणसे निरपेक्षनय मिथ्या हो जाता है, क्योंकि वस्तु अनन्त धर्मात्मक हैं उनमेंसे केवल एक धर्ममात्र वस्तुको जाना तो वह समीचीन ज्ञान नहीं है, इसी कारण वह एकान्त विवेचन है, अथवा एक धर्मका ज्ञान मिथ्या ज्ञान हो जायगा। यदि अन्य धर्मोंकी अपेक्षा रखकर किसी नयका प्रयोग किया जाता हो तो वह समीचीन प्रयोग है। यह नय सम्यक नय है क्योंकि उस सापेक्षनपने यद्यपि वस्तुके एक अंशको ही कहा लेकिन उस ज्ञाताने पदार्थको उस अंश मात्र ही नहीं समझा है, इस कारण वह नय सापेक्षनय है और सापेक्षनय सम्यक नय हुआ करता है इस तरह तीसरी जिज्ञासाका समाधान यह है कि नय जब अन्य नयोंकी अपेक्षा नहीं रखता है तो वह मिथ्या हो जाता है और अन्य नयोंकी अपेक्षा रखता है तो वह सम्यक हो जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सापेक्षत्वं नियमादविनाभावस्त्वनन्यथासिद्धः ।
अविनाभावोपि यथा येन विना जायते न तत्सिद्धिः ॥५६१॥

सामान्य विशेषमें परस्पर सापेक्षता व अविनाभावपना – इस गाथामें यह स्पष्ट किया है कि सामान्य और विशेषमें सापेक्षता किस कारणसे है, यहाँ कारण बताया है कि सामान्य और विशेषमें परस्पर सापेक्षता इस कारण है कि उनमें नियम से अविनाभाव है । सामान्य न हो तो विशेष नहीं ठहर सकता । विशेष न हो तो सामान्य नहीं रहता । जैसे एक मनुष्यमें सामान्य धर्म तो मनुष्यत्व है और विशेष धर्म बालपना, वृद्धपना, जवानी अथवा विद्वान होना, सुन्दर होना, उदार होना आदिक अनेक गुण हों तो यदि सामान्य मनुष्य न मानें तो विशेष बातें कहाँ विराजेंगी ? कौन जवान बना ? मनुष्यत्व तो है नहीं । कौन बालक बना ? तो सामान्यका अपलाप करनेपर विशेषका अभाव हो जाता है । और, यदि विशेषका अपलाप किया जाय कि बालक नहीं, जवान नहीं, बूढ़ा नहीं तो मनुष्यत्व विराजेगा कहाँ ? बच्चा भी नहीं, बड़ा भी नहीं, और मनुष्य है तो ऐसा मनुष्य कोई लाकर दिखाये तो सही तो विशेषके बिना सामान्य सामान्य नहीं हो सकता । तो लो सामान्य और विशेष ये दोनों अविनाभावी बन गए । तो जब इसमें सापेक्षता है तब ही तो यह अविनाभावी हुआ । एकके बिना दूसरा नहीं होता ऐसा जहाँ देखा जाय वहाँ अविनाभाव समझना चाहिए । सामान्यके बिना विशेष सिद्ध नहीं होता और विशेषके बिना सामान्य सिद्ध नहीं होता, इस कारण यह बात युक्तिसङ्गत है कि इन दोनोंमें अविनाभाव है परस्पर अविनाभाव होनेके कारण ही दोनोंमें सापेक्षता है । तो जब सामान्य और विशेषमें सापेक्षता है तो इसमें से कोई एक निरपेक्ष रूपसे सामान्यको ही जाने तो वह सम्यक कैसे हो सकता है ? अथवा अन्य दूसरे धर्मको जाने तो निरपेक्ष होकर जाननेसे तो मिथ्यानय बनता और सापेक्षताकी पद्धतिसे जाननेपर वह सम्यकनय हो जाता है । इस प्रकार जिज्ञासुकी तीसरी जिज्ञासाका समाधान दिया गया है ।

अस्त्युक्तो यस्य सतो यन्नामा यो गुणो विशेषात्मा ।
तत्पर्यायविशिष्टास्तन्नामानो नया यथाम्नायात् ॥५६२॥

नयोंके विषयभूत तत्त्वोंके नामपर नयोंके नामका निर्देशन —नयोंके क्या नाम होते हैं इस सम्बन्धमें इस गाथामें संकेत दिया है । आचार्य कहते हैं कि जिस द्रव्यका जिस नाम वाला कोई विशेष गुण कहा जाता है उस गुणकी पर्यायोंसे विशिष्ट और उस गुणको विषय करने वाला नय भी नयके नामसे कहा जाता है, अर्थात् जितने गुण पदार्थमें विवक्षित किए जाते हैं वे जिस जिस नाम वाले हैं उनको प्रतिपादन करने वाला अथवा जानने वाला नय उन्हीं नामोंसे पुकारा जाता है । इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गाथामें नयोंके नामकी कुञ्जी दिखाई गई है। जो विषय हो उसका जो नाम हो उसी विषयके आगे नय शब्द और जोड़ देनेपर उस नयका पूरा नाम हो जाता है। अब तक जितने नयोंके प्रयोग किए गए हैं उनमें यही कुञ्जी अपनाई गई है। व्यवहार कहते हैं भेद करनेको। भेद करनेकी बात जिस नयके विषयमें आयी है उस नयका नाम व्यवहारनय हो गया। पर्याय कहते हैं अंशको। पदार्थके अंशको विषय करने वाला जो नय है उसे पर्यायार्थिकनय कहते हैं। द्रव्य कहते हैं उस समस्त गुण पर्यायों के पिण्डको उस द्रव्यको जो विषय करता है उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं। तो अब तक जितने नयोंके नाम निकले हैं उन नामोंसे भी यही प्रकट होता है कि नय जिसको विषय करते हैं उनके नामपर ही नयोंके नाम रखे गए हैं। बस यही कुञ्जी समस्त नयोंके सम्बन्धमें लगेगी।

अस्तित्वं नाम गुणः स्यादिति साधारणः सतस्तस्य।
तत्पर्यायश्च नयः समासतोऽस्तित्वनय इति वा ॥५६३॥

नयोंके नामकरणकी पद्धतिका एक दृष्टान्त—नयोंके नाम विषयोंके नाम पर रखे जाते हैं इस बातको दृष्टान्त पूर्वक इस गाथामें दिखाया है। जैसे द्रव्यमें अस्तित्व नामका एक गुण है उस गुणको विषय करने वाले नयका भी नाम अस्तित्व नय कहा जाता है, द्रव्यमें जो ६ साधारण गुण हैं उनमें प्रथम गुण अस्तित्व है। अस्तित्व गुण उसे कहते हैं जिस शक्तिसे पदार्थका अस्तित्व कायम रहे। यद्यपि पदार्थ में अस्तित्व गुण निराला करके नहीं है। जो अस्तित्व गुण पदार्थका अस्तित्व कायम रखता हो, पर पदार्थ ही स्वयं इस रूप है इस ही बातका भेद करके अस्तित्व गुणके नामसे बताया गया है, तो ऐसे अस्तित्व गुणको जो कि एक साधारण गुण है उसको विषय करने वाला जो नय है उस नयका नाम अस्तित्वनय कहलाता है। इस कुञ्जी के अनुसार अस्तित्व गुणको विषय करने वाले नयका नाम अस्तित्वनय कहा है। इसी प्रकार अन्य नयोंके नाम भी समझना चाहिए। उसके लिए कुछ और भी दृष्टांत दे रहे हैं।

कर्तृत्वं जीवगुणोस्त्वथ वैभाविकोऽथवा भावः
तत्पर्यायविशिष्टः कर्तृत्वनयो यथा नाम ॥५६४॥

नयोंके नामकरणकी पद्धतिका द्वितीय दृष्टान्त—जीवमें एक कर्तृत्व गुण है अथवा कहो, वह कर्तृत्व नामक विभाव वैभाविक भाव है। उस कर्तृत्व पर्यायको विषय करने वाला जो नय है उस नयका नाम कर्तृत्वनय कहलाता है। कर्तृत्वको दो दृष्टियोंसे परखना चाहिए एक तो यह कि जो भी पदार्थ होते हैं वे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रतिक्षण किसी न किसी रूपसे परिणमते ही रहते हैं । परिणमन बिना किसी भी क्षण पदार्थ नहीं रहता है, तब इस ही परिणमन करने वालेको उस परिणमनका कर्ता कहा जाता है । तो ऐसा कर्तृत्व सभी पदार्थोंमें पाया जाता है । और सभी अवस्थाओंमें यह कर्तृत्व होता है लेकिन जब किसीको यह असन्तोष होता कि पदार्थ है, उसका परिणमनेका स्वभाव है, परिणमता रहता है उसमें कर्तापनकी क्या बात आयी ? कर्तापन तो वहाँ समझमें आता है जहाँ कोई जीव कुछ बल लगाकर कुछ बुद्धि लगाकर या श्रम करके करता हो किसी पदार्थमें कुछ वहाँ कर्ता नामसे व्यवहार होता है । तो इस दृष्टिसे अब दूसरा प्रकार सुनो ! दूसरे प्रकारमें यह तो न होगा कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको कर देता हो, क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपने आपमें स्वतन्त्र है, किन्तु जीव द्रव्यमें यह देखा जायगा कि यह संसारी प्राणी घर मकान आदिकको तो नहीं करता, यह तो बात ठीक है, पर उसमें जो क्रोध, मान, माया, लोभ विकल्प तरङ्ग आदिक उठ रहे हैं ऐसा परिणमन होना इस वस्तुके स्वभावमें तो नहीं है । जीव तो ज्ञान शक्तिरूप है, चैतन्य स्वभाववान है, उसमें क्रोधादिक विकारों का अवकाश नही है स्वभावमें यदि विकार हो तो विकार ही स्वभाव बन गया, और वे कभी फिर छूट न सकेंगे । तो ये विकार आत्माकी शक्तियोंमें नहीं हैं फिर भी उपाधिका निमित्त पाकर इनमें विकाररूप परिणमन होता है । इस स्थितिमें इस जीव को विकारका कर्ता कहा जाता है, और तब कहना कि जीवमें क्रोध कर्तृत्व है मान कर्तृत्व है, इस तरहकी पर्यायोंको जो विषय करे ऐसे नयका नाम है कर्तृत्वनय । इस नयने यह बताया है कि यह जीव विकार भावका कर्ता है । अथवा जो विकल्प विचार उत्पन्न होते हैं उनका कर्ता है । यह पर्यायार्थिकनयकी बात है । जिसमें निश्चयनय यह झलक देता है कि परमार्थतः ऐसा नहीं है । तो इस प्रकार एक कर्तृत्व पर्यायको जो विषय करे उस नयका नाम कर्तृत्व नय है इसमें भी वही कुञ्जी आयी कि जो नय जिस प्रकारके तत्त्वको विषय करता है उस तत्त्वका जो नाम रखा गया हो उस ही प्रकारका नाम उस नयका रखा जाता है ।

अनया परिहाटया किल नयचक्रं यावदस्ति नोद्धव्यम् ।
एकैकं धर्मं प्रति नयोपि चैकेक एव भवति यतः ॥५९५॥

नयोंके नामकरणकी पद्धतिसे शेष नयोंके नामकरणकी शक्यता और उनकी गणनाका बीजभूत कथन—नयोंके नामकी जो पद्धति बतायी गई है उस पद्धतिसे सभी नयोंके सम्बन्धमें बात जान लेना चाहिए । इसका कारण यह है कि एक एक धर्मके प्रतिनय भी एक एक है । जितने वस्तुमें धर्म हैं, अंश हैं उतने रूपसे पर्यायरूपसे उन सब अंशोंको जान सकने वाला नय भी होता है तब जितने धर्म हैं । अंश हैं नय उतने कहलायेंगे और जो जो नाम उन अंशोंके प्रसिद्ध हुए उन्हीं उन्हीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नामोंसे नयोंके नाम भी बन जायेंगे । जैसे पदार्थमें ज्ञान गुण है तो ज्ञान गुणको समझाने वाला जो नय है उसका नाम ज्ञाननय है । आत्मामें एक दर्शन शक्ति भी है, उसको समझाने वाला जो नय है उसका नाम दर्शननय है । तो जितने भी वस्तुमें अंश हैं, भेद हैं, पर्याय हैं उतने ही नय हुआ करते हैं । हमें उन समस्त अंशोंका बोध नहीं है और न उनका नाम प्रसिद्ध है पर वे अंश हैं और उनका जानना बनेगा तो उनके भी नयका विकास है उस समयमें और जिन शब्दोंमें उनका नाम होगा उन्हीं शब्दोंमें नयोंका भी नाम होगा । इस तरह यह सिद्ध होता है कि नय उतने हैं जितने कि पदार्थमें धर्म हैं अथवा वचनकी विवक्षायें हैं और उन नयोंके नाम वे ही हैं जो नाम नयके विषयभूत तत्त्वोंके हैं ।

सोदाहरणो यावान्नयो विशेषणविशेष्यरूपः स्यात् ।
व्यवहारापरनामा पर्यायार्थो नयो न द्रव्यार्थः ॥५९६॥

सोदाहरण व विशेषण विशेष्यभावरूप नयोंकी व्यवहारनयरूपता—उक्त गाथामें संकेतमें बताये गए विषयको और भी स्पष्ट रूपसे इस गाथामें कहा है । जितने भी उदाहरण सहितनय हैं और जितने भी विशेषण विशेष्य वाले नय हैं उन सबका व्यवहार करते हैं । जिसका दूसरा नाम पर्यायार्थिकनय भी है । उसको व्यवहारनय कहा अर्थात् पर्यायार्थिकनय कहा । उसे द्रव्यार्थिकनय नहीं कह सकते हैं । पदार्थके बहुत गहरे अन्तरङ्गमें जाकर भी कुछ प्रतिपादन यदि हो रहा है, कुछ विकल्प से समझा जा रहा है किसी भेदको तो उसको विषय करने वाला नय पर्यायार्थिकनय होगा द्रव्यार्थिकनय न होगा, क्योंकि जो कुछ भी भेद विवक्षासे कहा जाता है वह सब व्यवहारनय है अथवा पर्यायनय है । द्रव्यके समझनेके लिए किन्हीं भी शब्दोंमें कुछ कहा जाय वह सब प्रतिपादन व्यवहारनय होगा । द्रव्यार्थिकनय तो उन व्यवहारनयोंकी समझसे दृष्टिमें आता है । जो कुछ द्रव्यार्थिकनयका विषय है और उसकी अपेक्षा रखता हुआ व्यवहारनय सम्यक कहलाता है, पर व्यवहारनयके शब्दोंमें जो कुछ विषय आ रहा है वह द्रव्यार्थिकनयका विषय नहीं है ।

ननु चोक्तलक्षण इति यदि न द्रव्यार्थिको नयो नियमात् ।
कोऽसौ द्रव्यार्थिक इति पृष्टास्तच्चिन्हमाहुराचार्याः ॥५९७॥

समस्त विवेचनोंकी व्यवहाररूपता प्रसिद्ध होनेपर निश्चयनयके स्वरूपकी जिज्ञासा—शङ्काकार यहाँ प्रश्न करता है कि यदि उदाहरण सहितनय है या विशेषण विशेष्य रूप नय द्रव्यार्थिकनय नहीं है तो फिर द्रव्यार्थिकनय क्या कहलायेगा, इसका समाधान करेंगे ? शङ्काकारका यह अभिप्राय है कि उदाहरण सहित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बताये जाने वाले कथनको व्यवहारनय कहेंगे। तो द्रव्यार्थिकनयके विषयको भी जब स्पष्ट किया जाता है और उदाहरण दिया जाता है ऐसी स्थितिमें भी उसे व्यवहार-नय बता दे तब फिर द्रव्यार्थिकनय क्या होगा? इसी तरह विशेषण विशेष्यरूप रागादिक हैं, परिचय है उसे भी द्रव्यार्थिकनय बता दिया तो द्रव्यार्थिकनयके विषय को उन्हीं शब्दोंमें ही तो कहेंगे। जैसे कहा जीव ज्ञानमय है। तो जीव हो गया विशेष्य ज्ञानमय हो गया विशेषण। अब भी प्रतिपादन करेंगे तो वहाँ विशेष्य विशे-षण भावकी प्रक्रिया तो बनती ही है। अब अन्तरङ्ग विषय वाले द्रव्यको भी कहेंगे तो वहाँ भी विशेष्य विशेषणकी पद्धति आ ही जायगी। और, यहाँ यह प्रतिज्ञा सी कर दी गई है कि जितने भी विशेष्य विशेषण रूप नय हैं वे सब व्यवहारनय हैं अथवा पर्यायनय हैं तब फिर यह बतलाओ कि द्रव्यार्थिकनय कौन सा हो? शङ्काकारकी इस जिज्ञासामें तत्त्वके प्रति प्रेम जाहिर हो रहा है। द्रव्यार्थिकनयका जो विषय होता है वह इसकी झलकमें आया है तभी उसे लक्ष्यमें लेकर पूछ रहा है। द्रव्यार्थिकनय यदि इन सब नयोंमें नहीं आता या प्रतिपादनमें नहीं आता तब फिर वह नय होता क्या है? इसका समाधान जिज्ञासुने स्वहितके लिए प्राप्त करना चाहा। अब आचार्यदेव इस जिज्ञासाका समाधान करनेके लिए द्रव्यार्थिकनयका स्वरूप कहते हैं।

व्यवहारः प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेधकश्च परमार्थः।
व्यवहारप्रतिषेधः स एव निश्चयनयस्य वाच्यः स्यात् ॥५६८॥

निश्चयनयका स्वरूप—व्यवहारनय तो प्रतिषेध्य है और परमार्थ उसका प्रतिषेधक है अर्थात् व्यवहारनयने जो कुछ कहा उसके निषेध करने वाला निश्चयनय तब समझ लेना चाहिए कि निश्चयनयका विषय अथवा वाच्य व्यवहारनयका प्रतिषेध करता है। व्यवहार सारी व्यवस्थायें जमा रहा है, सब कुछ प्रतिपादन कर रहा है। आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ जाहिरात भी कर रहा है तब निश्चयनय केवल एक इस धुनमें है कि वह सबका ना कर जाय, यह भी नहीं, तो व्यवहारका प्रतिबोध करना ही निश्चयनयका वाच्य होता है। और इस कारण यह कथन समीचीन है कि व्यव-हार तो प्रतिषेध्य है और परमार्थ उसका प्रतिषेधक है, अब इसी विषयका स्पष्टी-करण करनेके लिए कुछ दृष्टान्त दिए जायेंगे, जिन दृष्टान्तोंसे यह विदित होगा कि परमार्थ तत्त्व अवक्तव्य है और परमार्थ तत्त्वकी दृष्टि करने वाला नय निश्चयनय है। ऐसा निश्चयनय सर्व व्यवहारका प्रतिषेध करने वाला हो रहा है। इस दृष्टिमें यह बात समायी हुई है कि व्यवहारनय जो कुछ कहता है वह यथार्थ नहीं है। व्यवहार-नयने पदार्थमें भेद किया तो निश्चयनय कहता है कि भेद नहीं है। अंशको ग्रहण किया तो निश्चयनय कहता है कि अंश परमार्थभूत नहीं है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय के कुछ उदाहरण दिये जायेंगे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

**व्यवहारः स यथा स्यात्सद्द्रव्यं ज्ञानवांश्च जीवो वा ।
नेत्येतावन्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपतिः ॥५९९॥**

निश्चयनयके विषयका स्पष्टीकरण—उक्त गाथामें यह बताया था कि व्यवहार प्रतिषेध्य है और उसका प्रतिषेधक परमार्थ है सो व्यवहारका प्रतिषेध होना ही निश्चयनयका वाच्य है। इस कथनसे यह ध्वनित किया गया है कि जो कुछ व्यवहारनयसे कहा जाता है वह सब हेय है, निषेध्य है। उसका कारण यही हो सकता है कि व्यवहारनय जो कुछ कहता है वह पदार्थका स्वरूप नहीं है। पदार्थ तो अखण्ड है, अभिन्न है और इसी कारण अवक्तव्य है किन्तु व्यवहारनय उसका भेद बतलाता है। पदार्थ तो अनन्त गुणात्मक अखण्ड तत्त्व है परन्तु किसी विवक्षित गुणके माध्यम से व्यवहारनय उसका विवेचन करता है। तो यहाँ यह ध्यानमें आना चाहिए कि परमार्थका विषय और व्यवहारनयका विषय परस्पर विरुद्ध हैं फिर भी पदार्थमें अविरोध है। यही तो स्याद्वादकी खूबी है कि परस्पर विरुद्ध धर्मोंको एक पदार्थमें अवस्थित बताना। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक है किन्तु उसमेंसे सामान्यका या विशेष अंशका ग्रहण करे सो व्यवहारनय है। तब समझना चाहिए कि व्यवहारनयका यह अंश है। केवल सामान्य है क्या, केवल विशेष है क्या ? वह सब निषेध करनेके योग्य है, तो व्यवहारसे व्यवहारनयका निषेध निश्चयनयका विषय है। जिसे यों समझिये कि व्यवहारनय गुण गुणीमें भेद बतलाता है तो निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है। भेद नहीं है, तो निश्चयनयका वाच्य अर्थ यही हुआ कि व्यवहारमें जो कुछ विषय आया उसका निषेध करे।

निश्चयनयके विषयके दो उदाहरण—निश्चयनयके विषयको दृष्टान्त द्वारा इस गाथामें बताया है कि जैसे व्यवहारनय यह विवेचन करता है कि अथवा जानता है कि द्रव्य सत्रूप है, तब निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है। उसका कारण यह है कि सत्रूप कहनेसे एक सत्त्व गुणका बोध हुआ। पदार्थमें जो अस्तित्व गुण है उसकी प्रमुखतासे कहा गया किन्तु पदार्थ केवल अस्तित्व गुणमय ही हो ऐसा तो नहीं है, किन्तु अनन्त गुणात्मक है। इस कारण पदार्थको सत्रूप कहना ठीक नहीं है ऐसा निश्चयनयसे जताया तब व्यवहारनयकी बातका निषेध निश्चयके द्वारा हुआ अथवा दूसरा दृष्टान्त लीजिए व्यवहारनयने यह विवेचन किया कि जीव ज्ञानवान है। निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है। तो यहाँ जीवको ज्ञानवान कहलाना यह भी तो व्यवहारनयका विषय है। निश्चयनयने इसका निषेध किया अर्थात् जीव ऐसा नहीं है। व्यवहारनय जैसे कहता है कि जीव ज्ञानवान है तो निश्चयनयके विषयमें क्यों नहीं है ऐसा ? यों नहीं है कि जीव अनन्त गुणोंका अखन्ड पिण्ड है। वे अनन्त गुण अभिन्न प्रदेशी हैं। तो वह पदार्थ अभिन्न रहा। अब ऐसे उस अखण्ड

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पदार्थमें गुण गुणीका भेद करना मिथ्या है। कैसे वहाँ ज्ञान अलग हुआ, जीव अलग हुआ और फिर जीव ज्ञानवाला है इस तरह बनाया जाय ? वहाँ तो जीव ही उस रूप है जैसा निश्चयनयने देखा, पर कथनमें कहनेपर भेद आ ही जाता है। तब व्यवहारनयका जो विषय है, भेद है उसका निषेध निश्चयनयके द्वारा हुआ। यों ही समझिये कि जितना भी विवेचन है प्रतिपादन है वह सब अंशरूप होगा, इसी कारण वह मिथ्या है। उस परमार्थ स्वरूपके सम्बन्धमें निश्चयनय कुछ नहीं कहता, केवल व्यवहारनयकी कही हुई बातका निषेध करता है।

व्यवहारका परमार्थ प्रतिबोधनमें प्रयास—यहाँ यह न समझा चाहिए कि निश्चयनयने व्यवहारनयका निषेध किया तो व्यवहारनय मिथ्या ही कहता होगा सो भी एकान्त नहीं है। व्यवहारनय निश्चयनयके विषयको समझानेका भरसक प्रयास करता है। तो उसका प्रयास निश्चयनयके विषयके लिए हो रहा है, अतएव उसे एकान्ततः अयथार्थ नही कह सकते, अतएव प्रतिपादन ही यथार्थ नहीं हो पाता। दूसरी बात ऐसी भी जिज्ञासा हो सकती है कि जब निश्चयनय केवल निषेध ही करता है तो यह बतलायें कि कि निश्चयनयने क्या कहा ? और निश्चयनयका विषय क्या समझा जाय ? उत्तर तो प्रसङ्गमें स्पष्ट है। जो ही निश्चयनयका विषय है। और, इस विषयसे यही ध्वनित होता है कि पदार्थ अवक्तव्य स्वरूप है और पदार्थ अवक्तव्य है। इन शब्दोंमें भी प्रतिपादन हुआ। ऐसा प्रतिपादन भी परमार्थनयको स्वीकार नहीं करता। पदार्थकी अवक्तव्यताका वर्णन भी तो वक्तव्य बन गया। तो ऐसा कोई सोच सकता था कि व्यवहारनय तो भेद करनेकी बात कहे और निश्चयनय उसे अवक्तव्य बता दे तो इतना भी बताना वक्तव्यपनेका सूचक बना, प्रतिपादन हुआ। किसी अंशमें भेद बना तो यह भी परमार्थसे स्वीकार नहीं है। अवक्तव्य है निश्चय, इसकी सूचना निषेधसे स्वयं हो जाती है। यों यह सिद्ध हुआ कि निश्चयनयका विषय व्यवहार निषेध्य है, और इसी प्रसङ्गमें यह भी जान लेना चाहिए कि निश्चयनय नयों का अधिपति है, इससे आगे और नय विकल्पका अवकाश नहीं है।

ननु चोक्तं लक्षणमिह नयोस्ति सर्वोपि किल विकल्पात्मा।
तदिह विकल्पाभावात् कथमस्य नयत्वमिदमिति चेत् ॥६००॥

सर्व विवेचनोंकी व्यवहारनयरूपता सिद्ध होनेपर निश्चयनयमें नय लक्षणत्वके अभावकी शंका—शङ्काकार कहता है कि पहिले तो यह विवेचन किया गया था कि द्रव्यनय विकल्पात्मक होता है अर्थात् नयोंका लक्षण ही विकल्प बताया था, लेकिन द्रव्यार्थिकनयका जो स्वरूप कहा जा रहा है अथवा निश्चयनयका जो विषय बताया जा रहा है उस प्रतिपादनसे तो यह स्पष्ट होता है कि इसमें विकल्प

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो कुछ पड़ ही नहीं रहा, क्योंकि निश्चयनयने तो केवल निषेध किया। विकल्प कुछ आया ही नहीं। तो जब निश्चयनयमें विकल्प न आया तो उसको नय कैसे कह दिया जायगा ? नयका जो लक्षण किया गया वह लक्षण घटित हो तब उसको नय कहना चाहिए। अब विकल्प निश्चयनयमें बता नहीं रहे तो निश्चयनयको नय न कहा जा सकेगा। अब इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

तन्न यतोस्ति नयत्वं नेति यथा लक्षितस्य पक्षत्वात्।
पक्षग्राही च नयः पक्षस्य विकल्पमात्रत्वात् ॥६०१॥

निश्चयनयके विषयका प्रतिपादन — आचार्यदेव कहते हैं कि उक्त शङ्काकारकी शङ्का संगत नहीं है अर्थात् निश्चयनय विकल्पात्मक नहीं है ऐसी उनकी दृष्टि अभी भ्रान्त है। क्योंकि निश्चयनयमें भी तो नहीं यह विकल्प आ रहा है, सो पहिले बताया ही गया कि निश्चयनयका वाच्य नहीं अर्थात् निषेध है। सो यह निषेध ही उसका एक पक्ष है। और पक्षका ग्राहक ही नय होता है और पक्ष ही विकल्पात्मक होता है। सो पहिले नयका लक्षण विकल्प बताया ही था। यहाँ निश्चयनयमें निषेध रूप विकल्प पड़ा है। जो किसी पक्षको ग्रहण करे ऐसे ज्ञानको अथवा उसका प्रतिपादन करने वाले वचनको नय कहते हैं, तो व्यवहारनयमें तो नाना भेद विषय पड़े किन्तु निश्चयनय उस निषेधरूप पक्ष हीं ग्रहणमें आया तो निषेध पक्ष तो आया वही निश्चयनयका विकल्प है। तो जैसे व्यवहारनय किसी भेदका धर्मका प्रतिपादन करने से विकल्पात्मक है यों ही निश्चयनय व्यवहारनयके विषयभूत पदार्थका निषेध बता रहा है सो वह भी विकल्पात्मक है। तो विकल्पात्मकपना लक्षण जैसे व्यवहारनय में घटित होता है उसी प्रकार निश्चयनयमें भी घटित होता है। इस विषयको और भी सुनो !

प्रतिषेध्यो विधिरूपो भवति विकल्पः स्वयं विकल्पत्वात्।
प्रतिषेधको विकल्पो भवति तथा सः स्वयं निषेधात्मा ॥६०२॥

विधिरूप प्रतिषेध्य व्यवहारनयकी विकल्परूपताकी तरह प्रतिषेधक निश्चयनयकी भी निषेधमय विकल्परूपता — जिस प्रकार व्यवहारनयका विषय प्रतिषेध्य कहा गया है वह विधिरूप विकल्प है स्पष्ट विकल्पात्मक होनेसे उसके विकल्पात्मकपनेमें सन्देह नहीं किया जा रहा इस ही प्रकार प्रतिषेधक जो रूप है निषेधात्मक जो आशय है वह भी विकल्परूप है। इन दो नयोंके प्रसङ्गमें ये ही दो तत्त्व आये कि प्रतिषेध्य और प्रतिषेधक ये दो प्रकारके नय हैं। तो प्रतिषेध्यमें तो नाना विधिरूपताका पक्ष पड़ा है और प्रतिषेधकमें निषेधरूप पक्ष पड़ा है तो किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पक्षको ग्रहण करे उसी को नय कहते हैं तो यों व्यवहारनय भी नय है और विकल्पात्मक है इसी प्रकार निश्चयनय भी विकल्पात्मक है अतएव नय है।

लक्षणमपि च यथा स्यादुपयोगो विकल्प एवेति ।
अर्थानुपयोगः किल वाचक इह निर्विकल्पस्य ॥६०३॥

अर्थाकृतिपरिणमनं ज्ञानस्य स्यात् किलोपयोग इति ।
नार्थाकृतिपरिणमनं तस्य स्यादनुपयोग एवयथा ॥६०४॥

नेति निषेधात्मा यो नानुपयोगः सबोधपक्षत्वात् ।
अर्थाकारेण बिना नेतिनिषेधावबोधशून्यत्वात् ॥६०५॥

प्रतिषेध्य और प्रतिषेधक दोनों नयोंकी विकल्पात्मकताका स्पष्टीकरण—उक्त प्रसङ्गमें यह बताया गया था कि व्यवहारनय प्रतिषेध्य है, निश्चयनय प्रतिषेधक है और दोनों ही विकल्पात्मक हैं। इसमें व्यवहारनय प्रतिषेध्य है और विकल्पात्मक है। इस सम्बन्धमें कोई शङ्का नहीं की गई किन्तु प्रतिषेधक निश्चयनय विकल्पात्मक कैसे हो गया ? यह शङ्का उठायी गई थी। और उसका समाधान यह दिया गया कि प्रतिषेधक नय भी विकल्पात्मक है इस ही भावको इन श्लोकों द्वारा स्पष्ट किया जाता है। देखिये ! पदार्थका उपयोग हो उसीको तो विकल्प कहते हैं। विकल्पका अर्थ क्या है ? किसी पदार्थका ग्रहण होना, उपयोग होना यही तो विकल्प है और पदार्थका उपयोग न हो अनुपयोग रहे उसे निर्विकल्प कहते हैं। तब यहाँ यह निर्णय कर लीजिए कि वह उपयोग क्या है ? ज्ञानका पदार्थाकार परिणमन होना यही तो उपयोग कहलाता है। और जब ज्ञानका अर्थाकार परिणमन न हो, उसमें किसी पदार्थका ग्रहण न आये तो वह अनुपयोग कहलाता है। तो उपयोग और अनुपयोग कहलाता है। तो उपयोग और अनुपयोगकी ऐसी स्थिति है। अब यहाँ यह परख लीजिए ! जैसे व्यवहारनयका विषय उपयोगरूप है, वहाँ अर्थाकारका विकल्प है तो यहाँ निश्चयनयका निषेधात्मक बोध है और वह निषेधक ज्ञान भी एक पक्ष है तो निश्चयनयमें प्रतिषेधका ग्रहण किया। तो यों निश्चयनयको अनुपयोगी नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह भी उपयोग ही है। उपयोग उसे कहते हैं जिस ज्ञानमें पदार्थाकार परिणमन हो। तो निश्चयमें अगर निषेधात्मक रूपसे अर्थात् काल परिणमन न होता तो निषेधात्मक ज्ञान भी न हो सकता था, पर होता रहता है निश्चयनयके निषेधका ज्ञान। तो यही सिद्ध करते हैं कि निश्चयनय भी उपयोगात्मक है और उपयोगको ही विकल्प कहते हैं। यों यह सिद्ध हुआ कि व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकल्पात्मक होता है।

जीवो ज्ञानगुणः स्यादर्थालोकं बिना नयो नासौ ।
नेति निषेधात्मत्वादर्थालोकं बिना नयो नासौ ॥६०६॥

अर्थालोकके बिना प्रतिषेध्य व प्रतिषेधक दोनों नयोंकी उपपत्ति न होनेसे विकल्पात्मकताकी सिद्धि– व्यवहारनयके समान निश्चयनय भी विकल्पात्मक है इस बातका दृष्टान्त इस गाथामें दिया गया है। जिस प्रकार व्यवहारनय यह कहता है कि जीव ज्ञानगुण वाला है तो ऐसे कथनमें यह बात ज्ञात हुई कि यह नय पदार्थको विषय किए बिना नहीं हुआ। इसमें अर्थालोक पड़ा हुआ है। अर्थलोकका अर्थ यह है कि पदार्थका ज्ञान होना। तो जैसे व्यवहारनयमें अर्थालोक है, अर्थ प्रकाश के बिना व्यवहारनयकी प्रवृत्ति नहीं है उसी प्रकार निश्चयनयका विषय है निषेध अर्थात् ऐसा नहीं है इस प्रकारका प्रतिषेधक नय निषेधको विषय करने वाला होता है। तो उसका विषय निषेध हुआ। निषेधरूप पदार्थका परिज्ञान हुआ तो निश्चयनय भी अर्थलोकके बिना नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जैसे विषय बोध व्यवहारनयमें है उसी प्रकार विषय बोध निश्चयनयमें भी है, और विषय बोध होनेसे विकल्पात्मक हुआ और विकल्पात्मक होनेसे नयका लक्षण निश्चयनयमें भी घटित हो गया। अतः निश्चयनयको नयके लक्षणसे बहिर्भूत नहीं मान सकते।

स यथा शक्तिविशेषं समीक्ष्य पक्षश्चिदात्मको जीवः ।
न तथेत्यपि पक्षः स्यादभिन्नदेशादिकं समीक्ष्य पुनः ॥६०७॥

प्रतिषेध्य और प्रतिषेधक दोनों नयोंमें पक्षग्राहिताकी समानता—निश्चयनयको विकल्पात्मक सिद्ध करनेके लिए उक्त गाथामें जो उदाहरण बताया है उसीका स्पष्टीकरण इस गाथामें किया जा रहा है। जीव ज्ञानगुण वाला है अथवा जीव चिदात्मक है ऐसा कथन व्यवहारनयका विषय है। तो यहाँ जीवकी विशेष शक्ति को देखकर यह समझा गया कि जीव चिदात्मक है। तो यह एक पक्ष ही तो हुआ तो अनन्त धर्मात्मक पदार्थोंमेंसे किसी अंशका ही ग्रहण करना तो हुआ। तो जैसे यह भेदक विचार एक पक्ष है उसी प्रकार अभिन्न अखण्ड जीवको समझकर यह कहना अथवा समझना कि वैसा नहीं है अर्थात् व्यवहारनयने जो यह समझाया कि जीव चिदात्मक है तो निश्चयनय कहता है कि ऐसा नहीं है। तो ऐसा नहीं है ऐसी दृष्टि करनेमें भी तो कुछ विषय आया। वह भी तो एक पक्ष है। तो जैसे व्यवहारनयमें विधिका पक्ष है तो निश्चयनयमें निषेधका पक्ष है और जो पक्षका ग्रहण करे उसे नय कहते हैं। तो नयके लक्षणमें बताया गया पक्ष ग्राह्यता विकल्पात्मकता ये दोनों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चयनयमें भी पाये जाते और व्यवहारनयमें भी पाये जाते। अतः निश्चयनयमें नय का लक्षण बराबर घटित होता है।

अर्थालोक विकल्पः स्यादुभयत्राविशेषतोपि यतः ।
न तथेत्यस्य नयत्वं स्यादिह पक्षस्य लक्षकत्वाच्च ॥६०८॥

प्रतिषेध्य और प्रतिषेधक दोनों नयोंमें अर्थालोककी अविशेषता—उक्त गाथामें जो स्पष्टीकरण किया गया है उस हीको युक्तिपूर्वक यहां पुनः बताते हैं। देखिये ! अर्थप्रकाश रूप विकल्प याने पदार्थ विषय हुए हैं इस प्रकारका विकल्प व्यवहारनय और निश्चयनय दोनोंमें ही समान है। इसी कारण जैसे व्यवहारनय विधिको विषय करनेसे नय कहलाता है। उसमें नयका लक्षण सुघटित है इसी प्रकार वैसा नहीं है। इस प्रकारके निषेधका विषय किया निश्चयनयने तो ऐसा निश्चयनयमें भी नयपना है, क्योंकि व्यवहारनयसे जैसे विधि पक्षका आलम्बन किया है उसी प्रकार निश्चयनयने निषेधपक्षका आलम्बन किया है। तो पक्षका आलम्बन करना व्यवहारके समान निश्चयनयमें भी घटित होता है। अतः निश्चयनयको निर्विषय नहीं कह सकते, निर्विकल्प नहीं कह सकते और इसी कारण उसमें नयका लक्षण घटित नहीं होता, यह भी नहीं कह सकते, इससे यह सिद्ध है कि निश्चयनय निषेध करनेकी बात समझा कर भी नयरूप है। उसमें निषेधका विषय पड़ा हुआ है।

एकाङ्गग्रहणादिति पक्षस्य स्यादिहांशधर्मत्वम् ।
न तथेति द्रव्यार्थिकनयोस्ति मूलं यथा नयत्वस्य ॥६०९॥

दोनों नयोंमें स्व स्व पक्षका निर्देश—व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी पक्षात्मक है इस बातका वर्णन इस गाथामें किया गया है। पक्ष उसीको कहते हैं जो एक अङ्गको ग्रहण करे। तो व्यवहारनयमें किसी एक धर्मकी विधि की थी तो व्यवहारनयने एक अङ्गको ग्रहण किया। तो निश्चयनयने भी तथा न इस तरहके पक्षको ग्रहण किया और इस पक्षमें अंशका ग्रहण है। तब निषेधका विषय करने वाला निश्चयनय भी एक अंशको विषय करनेके कारण पक्षात्मक माना जाता है। निर्विकल्पता तो उनके कहना चाहिए जहाँ न विधिका पक्ष रहता है और न निषेधका पक्ष रहता है। वहाँ तो जो पदार्थ जैसा है वही मात्र मान रहे हैं। उसके सम्बन्धमें विधि या निषेध सम्बन्धी विकल्प तरंग नहीं रहते। तो यों व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी एक नय लक्षण युक्त सिद्ध होता है।

एकाङ्गत्वमसिद्धं न नेति निश्चयनयस्य तस्य पुनः ।
वस्तुनि शक्तिविशेषो यथा तथा तदविशेषशक्तित्वात् ॥६१०॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रतिषेधकनयमें एकाङ्गताकी सिद्धि – यहाँ कोई ऐसी आशङ्का न करे कि निश्चयनयमें एकांशपना सिद्ध नहीं है। निश्चयनयमें भी एकांगता बराबर है। निश्चयनयका विषय क्या ? निषेधका तथा न जैसे कि व्यवहार बताता है, वह नहीं, इस तरहके विषय करने वाले निश्चनयमें एकांगता असिद्ध नहीं है. इसका कारण है कि जैसे वस्तुमें विशेष शक्तियाँ होती हैं उस ही प्रकार उसमें अविशेष शक्ति भी होती है। पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है और सामान्य विशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाणका विषय है। अब उस वस्तुमें सामान्य अंश तो द्रव्यार्थिकनयका विषय है। तबसे निश्चय नयका विषय कह लीजिए और विशेष अंश पर्यायार्थिकनयका विषय है, इसीको व्यवहारनयका विषय कहियेगा। तो अब यहाँ यह परख लेंगे कि विशेषको विषय किया, इसमें वस्तुके एक अंगको विषय किया और निश्चयनयने निषेधको विषय किया, तो विशेषका निषेधरूप अंश है सामान्य अंशमें सामान्य अंशका विषय किया निश्चयनयने तो यों निश्चयनयमें भी एकांगता सिद्ध ही है। तो निश्चयनयमें एकांगपना सिद्ध है इसी कारण पक्षग्राह्यता सिद्ध है. इसी कारण विकल्पात्मकता सिद्ध है। अतः निश्चयनयको नय कहना युक्तिसङ्गत ही है।

ननु च व्यवहारनयः सोदाहरणो यथा तथायमपि ।
भवतु तदा को दोषो ज्ञानविकल्पाविशेषतो न्यायात् ॥६११॥

स यथा व्यवहारनयः सदनेकं स्याच्चिदात्मको जीवः ।
तदितरनयः स्वपक्षं वदतु सदेकं चिदात्मत्विवतिचेत् ॥६१२॥

निश्चयनयको सोदाहरण माननेकी आशंका अब यहाँ शङ्काकार यह कह रहा है कि जैसे व्यवहारनयको उदाहरण सहित बताया अथवा यों कहा गया कि व्यवहारनय उदाहरण सहित होता है तो इस ही प्रकार निश्चयनयको भी उदाहरण सहित माना जाय तो यों सिद्धान्त कहा जाय कि निश्चयनय भी उदाहरण सहित होता है। तब इसमें क्या दोष आता ? जब ज्ञान विकल्पकी अविशेषता दोनों जगह है, व्यवहारनयमें भी ज्ञान विकल्प बना हुआ है और निश्चयनयमें भी ज्ञान विकल्प बना हुआ है तो इस ज्ञान विकल्पकी समानताके कारण व्यवहारनयकी तरह निश्चयनयको भी उदाहरण सहित मान लिया जाना चाहिए, फिर उसका निषेध क्यों किया जा रहा है ? उदाहरण सहित कैसे मान लिया जाना चाहिए उसके लिए दृष्टांत रूपमें सुनिये ! कि व्यवहारनयका उदाहरण रख लीजिए सत् अनेक है अथवा जीव चिदात्मक है। और निश्चयनयका उदाहरण रख लीजिए कि सत् एक है, जीव सत् है, तब यहाँ ऐसा यह देखेंगे कि व्यवहारनयने सत्को अनेक बताया तो उससे विपरीत निश्चयनय बता रहा है कि सत् एक है, तो व्यवहारनयका जैसे वह उदाहरण है तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निश्चयनयका यह उदाहरण हो गया कि सत् एक है और जैसे व्यवहारनयमें यह उदाहरण था कि जीव चिदात्मक है ऐसे ही यहाँ निश्चयनयमें यह उदाहरण हो गया कि जीव चित स्वरूप है। तो ऐसा कहनेसे व्यवहारनयकी तरह निश्चयनय भी उदाहरण सहित हो जाता है। और, यह भी विदित हो जाता है कि निश्चयनय व्यवहारनयसे भिन्न है। व्यवहारनय और तरहसे विकल्पका कर्ता है, निश्चयनय उससे विपरीत विकल्पका कर्ता है। तब व्यवहारनयकी भांति निश्चयनयको भी सोदाहरण मान लेना चाहिए।

न यतः सङ्करदोषो भवति तथा सर्वशून्यदोषश्च ।
स यथा लक्षणभेदाल्लक्ष्यविभागोस्त्यनन्यथासिद्धः ॥६१३॥

दोनों नयोंमें लक्षणभेद न मानकर समानता माननेपर दोषापत्ति बताते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शङ्काके समाधानमें इस गाथामें यह कहा जा रहा है कि यदि व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी उदाहरण सहित मान लिया जाता है तब संकर दोष और सर्व शून्यताका दोष आनेकी नौबत आती है, क्योंकि व्यवहारनयका मूल लक्षण यह है कि जो भेद करे सो व्यवहारनय है। और, यहाँ निश्चयनयको उदाहरण सहित मान लेनेपर भेद बन जाता है। तो यहाँ भी भेद का ही ग्रहण हुआ। तो व्यवहारनय और निश्चयनयमें फिर कोई अन्तर नहीं रहता। यों संकर दोष आयगा। व्यवहार और निश्चय दोनों एकमेक बन गए और तब संकर दोष हो गया। व्यवहार निश्चय बन गया, निश्चय व्यवहार बन गया तो क्या रहा? कुछ न रहा। यों सर्वशून्यताका दोष आता है। अब इस बातको सुनिये! कि उदाहरण सहित निश्चयनयके प्रतिपादनमें भेद कैसे सिद्ध होता है। जैसे निश्चयनयका उदाहरण दिया कि सत् एक है तो यहां यह निहार लीजिए कि सत् तो बन गया लक्ष्य और एक बन गया लक्षण, जिसके विषयमें कहा जा रहा है वह तो है लक्ष्य और जो कुछ बात बताई जा रही वह है लक्षण, तो सत् एक है ऐसे कथनमें लक्ष्य लक्षण का भेद सिद्ध सोता है, और जो भेदको विषय करे उसे व्यवहारनय कहा गया है। यों निश्चयनय और व्यवहारनयमें संकर दोष हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में भी देखिये! निश्चयनयका दूसरा उदाहरण शङ्काकारने यह दिया है कि जीव चित है। तो जीवको चित स्वरूप कहने पर भी जीव तो लक्ष्य सिद्ध होता है और उसका लक्षण चित सिद्ध होता है। तो जीव लक्ष्य है चित् लक्षण है, इस तरह लक्ष्य लक्षण रूप भेद यहाँ बन गया। और, जितना भी भेद है वह व्यवहारनयका विषय होगा। भेद निश्चयनयका विषय नहीं होता। अब यदि निश्चयनयको उदाहरण सहित मान लिया जानेके कारण निश्चयनयका भी विषय भेद मान लिया जाता है तो संकरपना और सर्व शून्यता ये दोनों यहाँ भली प्रकार सिद्ध हो जाते हैं। तब न निश्चय रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

और न व्यवहारनय रहा। फिर लोक व्यवहारकी पद्धति भी नष्ट हो जायगी। अतः यह बात मान लेना चाहिए कि निश्चयनयका विषय निषेध नहीं है और वहाँ उदाहरण नहीं। निश्चयनय उदाहरण रहित है और किसी भी प्रकार प्रतिपादनके योग्य नहीं है।

लक्षणमेकस्य सतो यथाकथञ्चिद्यथा द्विधाकरणम्।
व्यवहारस्य तथा स्यात्तदितरथा निश्चयस्य पुनः ॥६१४॥

व्यवहारनय व निश्चयनयके लक्षणमें परस्पर सप्रतिपक्षता – व्यवहारनयका लक्षण तो यह है कि एक ही अखण्ड सत् पदार्थमें जिस किसी भी प्रकार आवश्यक समझा जाय वहाँ भेद कर देना अर्थात् सत्में भेद बतलाना व्यवहारनयका लक्षण है। अब देखिये ! निश्चयनयका लक्षण ठीक इससे विपरीत है। सत्में अभेद बतलाना यह निश्चयनयका लक्षण है। तो भेदकी बात तो बतलायी जा सकती है। अभेदकी बात भेद किए बिना समझाई नहीं जा सकती और भेद करके समझाया गया तो इसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहारनयके द्वारा परमार्थके विषयको समझा गया है, पर परमार्थका विषय सीधे किन्हीं शब्दोंसे बता दें ऐसा नहीं हो सका है। तो इससे यह सिद्ध है कि व्यवहारनयमें तो उदाहरण हो सकता है। क्योंकि उदाहरण तो भेद सिद्ध करता है पर निश्चयनयका उदाहरण नहीं होता, न इसमें विशेषण विशेष्य भाव बन सकता। उदाहरण हो और विशेषण विशेष्य भाव बने तो वह सब व्यवहारनय बन जायगा।

अथ चेत्सदेकमिति वा चिदेव जीवोऽथ निश्चयो वदति।
व्यवहारान्तर्भावो भवति सदेकस्य तद्द्विधापत्तेः ॥६१५॥

निश्चयनयको वचन प्रयोगमें उदाहृत किये जानेपर अनिष्ट दोषापत्तिका प्रसंग—यदि शङ्काकारके कथनके अनुसार सत्को एक मान लिया जाय अथवा चित् ही जीव है ऐसा मान लिया जाय और इसका निश्चयनयका उदाहरण बताया जाय तो व्यवहारनय और निश्चयनयमें कुछ भी भेद न रहेगा। ये जो दो उदाहरण शङ्काकारने दिया है वे उदाहरण तो व्यवहानयमें ही गर्भित हैं। सत् एक है ऐसा कहनेपर भेद तो सिद्ध हो ही गया। यह सत् फिर एक है। वहाँ कल्पनामें दो जगह उपयोग बना। तो वह व्यवहारनयका विषय हुआ और जब कहा जीव सत् है तो यों जीवको चित्स्वरूप कहनेसे भी जीवमें भेद ही सिद्ध होगा। तो यों निश्चयनयका कुछ भी उदाहरण दिया जाय तो वह भेदपरक हो जानेसे व्यवहारनयका ही उदाहरण बनेगा, निश्चनययका उदाहरण न कहा जा सकेगा। शङ्काकारने निश्चयनयमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो दो उदाहरण दिया है, सत् एक है और जीव चित् है, ये दोनों ही उदाहरण व्यवहारनयके बनते हैं निश्चयनयके नहीं। यह बात किस प्रकार घटित है सो अगली गाथा में कहते हैं।

एवं सदुदाहरणे सल्लक्ष्यं लक्षणं तदेकमिति ।
लक्षणलक्ष्य विभागो भवति व्यवहारतः स नान्यत्र ॥६१६॥

अथवा चिदेव जीवो यदुदाह्रियतेप्यभेदबुद्धिमता ।
उक्त वदत्रापि तथा व्यवहारनयो न परमार्थः ॥६१७॥

सत् एक है यों निश्चनयका उदाहरण माननेपर होने वाली दोषापत्तिका विवरण—शङ्काकारका जो उदाहरण है निश्चयनयके सम्बन्धमें कि सत् एक है तो इसमें देखिये ! कैसे दोष आ रहा है। जहाँ यह कहा कि सत एक है वहाँ सत तो बन गया लक्ष्य और एक हो गया, किन्तु लक्षण और लक्ष्यका भेद व्यवहार नयमें ही होता है, निश्चयनयमें नहीं होता। शङ्काकारने दूसरा उदाहरण दिया है निश्चयके सम्बन्धमें कि जीव चित है। तो यहाँ भी परख लीजिए कि जीव तो हो गया लक्ष्य और चित बन गया लक्षण, तो यहाँ भी लक्ष्य लक्षणका भेद बन गया, और जो भेदका विषय करे उसे व्यवहारनय कहते हैं। यद्यपि शङ्काकारने इन दोनों उदाहरणोंका बहुत प्रयास करके भेद बुद्धिकी ओर लाकर बताया होगा लेकिन उसका सयुक्तिक विचार करनेपर यह ही सिद्ध होता कि उदाहरण मात्र ही भेदको उत्पन्न कर देता है। वह कितना भेद परक उदाहरण है यह बात तो अलग है, यह तो एक उसकी मीमांसाकी बात है, लेकिन उदाहरण देते ही यहाँ भेद सिद्ध हो जाता है, और जो भेद है वह व्यवहारनयका विषय है, निश्चयनयका विषय नहीं है इससे यह मानना चाहिए कि जितने भी भेद व्यवहार हैं वे सब व्यवहार ही हैं।

एवं सुसिद्धसंकर दोषे सति सर्वशून्यदोषः स्यात् ।
निरपेक्षस्य नयत्वाभावात्तल्लक्षणाद्यभावत्वात् ॥६१८॥

उक्त प्रकार व्यवहार व निश्चयनयमें संकरदोष होनेपर सर्व शुन्यताके दोषकी प्रसक्ति—व्यवहारनयकी भाँति निश्चयनयको भी सोदाहरण मान लेनेपर सर्व संकर दोष हो जाता है, तो व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों एकमेक हो जाते हैं. उनमें विषयभेद नहीं रहता और यों संकर दोष होनेपर यहाँ सर्व शून्यताका दोष आता है। हाँ यह बात तो जरूर थी कि व्यवहारनय उदाहरण सहित है और व्यवहारनय निश्चयनयकी अपेक्षा रखकर प्रयुक्त होता है, क्योंकि निरपेक्ष निश्चयनयका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रयोग गुणकारी नहीं होता, उसमें नयपनेका लक्षण नहीं आता । लोकव्यवहार नयकी भाँति निश्चयनयको भी उदाहरण सहित मान लिया जाय तो उदाहरण देनेमें तो भेद ही बनता है । और भेद जैसे व्यवहारनयका विषय हो वैसे ही उदाहरण देनेके निश्चयनयमें भी विषय बन गया । तो अब यह कैसे कहा जा सकेगा कि यह तो व्यवहारनय है और यह निश्चयनय है ? जब व्यवहारनय और निश्चयनयमें संकरपना आ गया तो उनमेंसे कौन टिके ? और कौन मिटे ? फल यह होगा कि न व्यवहार नय रहेगा और न निश्चयनय रहेगा ! यों सर्वशून्यताका दोष आता है । इस कारण यह निर्णय रखना चाहिए कि भेद विषय वाला तो व्यवहारनय है और अभेद विषय वाला निश्चयनय है । अथवा विधिपरक तो व्यवहारनय है और निषेधको ही विषय करने वाला निश्चयनय है । विशेषण विशेष्यभाव और उदाहरण व्यवहारनयमें संभव हैं ।

ननु केवलं सदेव हि यदि वा जीवो विशेषनिरपेक्षः ।
भवति च तदुदाहरणं भेदाभावात्तदा हि को दोषः ॥६१९॥

अपि चैवं प्रतिनियतं व्यवहारस्यावकाश एव यथा ।
सदनेकं च सदेकं जीवश्चिद्द्रव्यमात्मवानिति चेत् ॥६२०॥

केवल सत् है या जीव है ? यों निश्चयनयका उदाहरण मान लेनेका शङ्काकार द्वारा प्रतिपादन—अब यहाँ शङ्काकार कहता है कि यहाँ सत् एक है ऐसा कहनेसे भी व्यवहारनय बता दिया ! जीव चित् है, इस कथनको भी व्यवहार नयने बता दिया, क्योंकि यहाँ शब्द दो बोले गए हैं । जब उनमें विशेषण विशेष्यभाव पना डाल दिया है, और यों भेद डालकर उसे निश्चयनयका उदाहरण नहीं माना जा रहा है तो चलो मत मानो ! लेकिन इतना तो मान लो कि निश्चयनयका उदाहरण केवल सत् इतना भर कहना है । सत् इतना ही शब्द बोल देनेपर अब विशेषण विशेष्य भाव कहाँ बनेगा ? और उसका उदाहरण भी क्या मिलेगा ? तब तो इसको निश्चयनय समझ लीजिये ! तो यहाँ जब सत् इतना ही कहा तब कोई दोष नहीं आता ! इसी प्रकार जीव चित् है इतना कह देने भरसे उदाहरण और विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना करके इसे भी निश्चयनयका विषय नहीं मानते तो चलो मत मानो ! किन्तु 'जीव' इतना भर शब्द तो निश्चयनयका विषय बन जायगा, फिर तो कोई दोष नहीं आता । व्यवहारनयका अवकाश तो वहाँ है जहाँ भेद नजर आता हो । सत् एक है, इतना कहनेमें भी भेद डाल दिया और उसे व्यवहारनय बता दिया । लेकिन 'सत्' इतना कहनेमें क्या भेद डालोगे ? वह तो व्यवहारनयका विषय न बनेगा । उसे तो निश्चयनयका उदाहरण मानो. इसी प्रकार जीव चित्स्वरूप है, इसमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भेद डाल दिया, और उसे व्यवहारनयका विषय बना दिया। लेकिन कोई यह कहे कि जीव तो इतना कहने भरसे तुम क्यों नहीं निश्चयनयका उदाहरण मान लेते ? तो ये निश्चयनयके उदाहरण हैं, और आपको इस तरह निश्चयनयको उदाहरण सहित मान लेना चाहिए। अब इस शङ्काका उत्तर कहते हैं।

न यतः सदिति विकल्पो जीवः काल्पनिक इति विकल्पश्च।
तत्तद्धर्मविशिष्टस्तद्वानुपचर्यते स यथा ॥६२१॥

उक्त उदाहरणोंकी भी धर्मोपचार होनेसे निश्चयनयकी अविषयता – उक्त गाथामें शङ्काकारने यह कहा है कि जीव है, सत् है, चित् है आदिक रूप तो निश्चयनयके विषय हो जाना चाहिए। उस शङ्काके समाधानमें यह गाथा कही गई है। शङ्काकारकी उक्त शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि सत् इतना भी कोई विकल्प पड़े अथवा जीव इतना भी कोई विकल्प हो तो ये दोनों ही विकल्प कल्पित हैं अर्थात् किसी अर्थको लेकर, विशेषण भावको लेकर यह शब्द बना है। भिन्न-भिन्न धर्मोंसे युक्त होनेके कारण उन उन धर्मों वाला बताया जाय पदार्थ तो यह उपचारसे कहा जायगा। जिस धर्मकी जब विवक्षा होती है उस धर्मसे युक्त वस्तुको कहना यह उपचारसे होता है। यद्यपि शङ्काकारने विशेषण वाला द्वितीय शब्द हटाकर केवल यही प्रयोग किया कि सत् है, जीव है, लेकिन इतना भी कहनेपर भिन्न धर्मका संकेत होता है। और उस धर्मसे युक्त पदार्थका निर्देश होता है अतएव यहाँ भी भेद उपस्थित हो ही गया, और जहाँ भेद आये उसको व्यवहार कहते हैं। इस कारण सत् है जीव है, इतना भी प्रयोग निश्चयनयमें होता नहीं है।

जीवः प्राणादिमतः संज्ञाकरणं यदेतदेवेति।
जीवनगुणसापेक्षो जीवः प्राणादिमानिहास्त्यर्थात् ॥६२२॥

निश्चयनयके उक्त उदाहरणमें धर्मोपचारका स्पष्टीकरण—जीव है, सत् है, ऐसा एक एक शब्द कहनेमें भी धर्मका उपचार होता है, यह बात जो उक्त गाथामें कही गई है उसका स्पष्टीकरण इस गाथामें किया गया है। जैसे कहा जीव है तो जीवका अर्थ क्या है ? जो प्राणोंको धारण करे उसको जीव कहते हैं। या जो जीवन गुणकी अपेक्षा रखे उसे जीव कहते हैं। तो लो यहाँ जीव मात्र ही कहा तो भी यह बोध हुआ कि जो प्राणोंसे युक्त हो सो जीव है, अथवा जिसमें जीवत्व गुण हो सो जीव है। तो यहाँ प्राणादिमान होना या जीवन गुण सापेक्ष होना यह बात तो शब्द बोलनेसे ध्वनित हो गई। तो लो, अब भेद आ गया कि यह पदार्थ भी है जो प्राणोंसे जीता है, अथवा जिसमें जीवन गुण रहता है, ये सब बातें केवल एक शब्द कहनेपर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी आ जाती हैं। तो यों कुछ भी उदाहरण देवें वे सब भेद साधक हैं और जो भेद साधक वचन हैं वे सब व्यवहारनयमें ही गर्भित हैं।

यदि वा सदिति सत्सतः स्यात्संज्ञा सत्तागुणस्यसापेक्षात् ।
लब्धं तदनुक्तमपि सद्भावात् सदिति वा गुणो द्रव्यम् ।।६२३।।

गुणसापेक्षता होनेसे उक्त उदाहरणकी निश्चयनयविषयता—एक शब्द बोलनेपर भी धर्म विशिष्ट वस्तुका बोध होता है और वहाँ उस धर्मका वस्तुमें उपचार बनता है इसके स्पष्टीकरणके लिए इस गाथामें द्वितीय उदाहरणमें आलोचना की गई है। जैसे यह कहा गया कि सत् है तो सत् यह नाम सत् गुणकी अपेक्षा रखने वाले पदार्थका है। याने जिसमें सत्त्व गुण हो उसे सत्त्व कहते हैं। सत् गुण न कहें तो भी और बात न कहनेपर भी यह बोध तो हो ही गया कि अस्तित्व गुणसे सहित है। तो यहाँ सत्में सीधा यह विकल्प नहीं उठाया कि वह द्रव्य है या गुण है तो भी बिना हो कहे भी सत् इतना मात्र कहनेसे यह विकल्प उठ जाता है। यह पदार्थ सत् है. इसका भाव यह है कि यह पदार्थ अस्तित्व गुणसे युक्त है। इसमें सत्ता धर्म पाया जाता है और इस तरहकी दृष्टि रखनेसे यहाँ भेदका बोध हो गया। पदार्थ है उसमें सत्त्व गुण है। तो लो सत्त्व गुण और वह गुणी पदार्थ ऐसे वह दो भेद कर दिए गए। इससे समझना चाहिए कि जितने भी विकल्पात्मक ज्ञान हैं अथवा भेद साधक विज्ञान हैं वह सब व्यवहारनयका विषय होता है। देखो ना, केवल इतना ही कहा कि सत् लेकिन विद्वान श्रोताओंको तो यह भास ही जायगा कि यह कहा जा रहा है। जिसमें सत्त्व गुण है ऐसा यहाँ पदार्थ है तो गुण गुणीका भेद हो ही गया और यह भेद व्यवहारनयका विषय है इस कारण इसको निश्चयनयका उदाहरण नहीं कहा जा सकता है।

यदि च विशेषणशून्यं विशेष्यमात्रं सुनिश्चयस्यार्थः ।
द्रव्यं गुणो न य इति वा व्यवहारलोपदोषः स्यात् ।।६२४।।

विशेषण शून्य विशेष्यमात्रको निश्चयनयका उदाहरण माननेकी समालोचना—यदि कोई शङ्काकार यहाँ ऐसी मनमें शङ्का रखे कि किसी शब्दके बोलनेपर कोई विशेषण वाली बात ही दृष्टिमें आ जाती है तो इस स्थितिमें दिमागको नहीं लगाया। शब्द तो बोल दे, पर विशेषण रहित विशेष्यका ही ध्यान रखे तो यों विशेषण रहित विशेष्य तो निश्चयनयका विषय मान लिया जायगा। यदि कोई विवेकी ऐसा अपना विवेक बनाये तो सुनो ! इस तरह ही दृष्टि बनाकर अथवा विशेषण रहित विशेष्यको ही दृष्टिमें रखकर वह कुछ आगे पढ़ रहा है तो इस स्थितिमें चाहे द्रव्य और गुणकी सिद्धि हो जाय परन्तु पर्याय तो सिद्ध होगी ही नहीं। जो शब्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बोला उस शब्दसे जो विशेषण ध्वनित होता है उसको तो दृष्टिमें लेना ही नहीं है इस आग्रही शङ्काकारको और उस शब्दके द्वारा धर्म विशिष्ट जो धर्मी समझा जाता है केवल उस विशेष्यको ही वाच्य समझता है तब तो शब्दार्थ भी खतम हुआ, विशेषण-भाव न रहा, पर्याय भी सिद्ध न हो सका। तो यों जब पर्यायें भी सिद्ध न हो सकेंगी तो व्यवहार कहाँ रहेगा ? उसका ही लोप हो जायगा। जैसे मानो कहा जीव और जीव शब्दका अर्थ यह है कि जो चैतन्य प्राणसे जीवे या दश प्राणोंसे जीवे, जहाँ जीवन गुणकी बात हो उसको जीव कहते हैं। अब शब्द बोलकर जीवकी विशेषता तो दृष्टिमें रखी नहीं, फल क्या हुआ ? असाधारण धर्म गायब हो गया। जब असाधारण धर्मका ही ध्यान न रहा तो असाधारण धर्म विशिष्ट ही तो गुण द्रव्य जाना जाता है। किसी पदार्थकी पहिचान असाधारण धर्मसे होती है। अब यहाँ असाधारण धर्मका तो ख्याल ही नहीं किया जा रहा है तो फिर द्रव्यका भी बोध कैसे हो ? गुणका भी बोध कैसे हो ? फिर तो कहीं बोध हो ही नहीं सकता। सर्व प्रकारकी तीर्थ प्रवृत्तिका लोप होगा, व्यवहारका भी लोप होगा, व्यवहारका भी लोप हो जायगा। यह एक महान दोष आता है यदि विशेषण रहित विशेष्यको ही निश्चयनय का विषय स्वीकार किया जाता है।

तस्माद्वसेयमिदं यावदुदाहरणपूर्वको रूपः ।
तावान् व्यवहारनयस्तस्य निषेधात्मकस्तु परमार्थः ॥६२५॥

सोदाहरणरूपोंकी व्यवहारनयरूपता व निश्चयनयकी निषेधात्मकता का निर्णय—इस कारण ऐसा ही निर्णय रखना चाहिए कि जितना भी उदाहरण पूर्वक कथन बनेगा वह सब व्यवहारनय बनेगा। क्योंकि कथनमें कोई शब्द ही तो बोला जायगा और शब्द धातु निष्पन्न होता है। धातु किसी एक अपनी क्रियाको बताता है। उस क्रियामें रहने वालेको धातु निष्पन्न शब्द बनाते हैं तो शब्दों द्वारा कोई विशेषणकी बात ही तो प्रकट हुई। ऐसी स्थितिमें अंश ही जाना गया, भेद ही समझा गया। तब कुछ भी उदाहरण दें कुछ भी वचन बोलें उस वचनमें भेद ही सिद्ध होगा। और, भेद सिद्ध होनेके कारण वह व्यवहारनय बनेगा। फिर निश्चयनय क्या बनेगा ? तो यही कहना पड़ेगा कि व्यवहारका जो निषेधक हो सो निश्चयनय है। निश्चयनयमें लक्ष्य कुछ न रहा हो ऐसी बात नहीं है। निश्चयनयमें लक्ष्य है। किसी का बोध है जिसके बलपर ही तो व्यवहारका निषेध किया जा रहा है। यदि कोई किसी सम्बन्धमें यह कहे कि ऐसा नहीं है तो ऐसा कहने वालेके यह ज्ञान तो बना ही है कि ऐसा है। भले ही उसे न कहे, पर तथ्य मालूम हो तभी कोई अतथ्यका निषेध कर सकता है कि ऐसा नहीं है। निश्चयनयमें तथ्यका पता है, उस अखण्ड सत्का परिचय है, जिसके बलपर ही यह निश्चयनय निषेध करता है व्यवहारका कि ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। तो निश्चयनयका विषय निषेध है और व्यवहारनयका विषय भेद है। जो भेदको सिद्ध करे सो व्यवहारनय है और जो व्यवहारका निषेध करे सो निश्चयनय है।

ननु च व्यवहारनयो भवति च निश्चयनयो विकल्पात्मा।
कथमाद्यः प्रतिषेध्योऽस्त्यन्यः प्रतिषेधकश्चकथमिति चेत् ।६२६।

व्यवहारनय व निश्चयनय दोनोंके विकल्पात्मक होनेपर व्यवहारको प्रतिषेध्य व निश्चयनयको प्रतिषेधक माननेके कारणकी जिज्ञासा— शङ्काकार यहाँ अपना एक प्रश्न रख रहा है कि जब व्यवहारनय भी विकल्पात्मक है और निश्चयनय भी विकल्पात्मक है फिर यह भेद कैसे बन गया कि व्यवहारनय तो प्रतिषेध्य होता है और निश्चयनय उसका प्रतिषेधक होता है। तब दोनों ही नय विकल्पात्मक है। दोनों नयोंकी विकल्पात्मकता भली प्रकार सिद्ध की गई है। यद्यपि निश्चयनका विषय निषेध कहा है इतनेपर भी विकल्पात्मक भी सिद्ध किया गया। निश्चयनयमें न का तो बोध हुआ। तो निषेधरूप विकल्पका करने वाला निश्चयनय है इस बातका भले प्रकार समर्थन किया गया है। तो जब व्यवहारनय भी विकल्पात्मक है और निश्चयनय भी विकल्पात्मक है फिर यह भेद कैसे डाला जा रहा है कि व्यवहारनय तो निषेध करने योग्य है और निश्चयनय उसका प्रतिषेधक है। कोई उल्टा कहदे कि व्यवहारनय तो निषेधक है, निश्चयनय निषेध्य है विकल्पात्मककी समानता होनेपर फिर उनमें एक कोई प्रतिषेध्य हो दूसरा प्रतिषेधक हो यह अन्तर कैसे बना ? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

न यतो विकल्पमात्रमर्थाकृतिपरिणतं यथा वस्तु।
प्रतिषेध्यस्य न हेतुश्चेदयथार्थस्तु हेतुरिह तस्य ।।६२७।।

व्यवहारके प्रतिषेध्यत्वमें अयथार्थताकी कारणरूपता—शङ्काकारने जो उक्त शङ्का की है वह बिना विचारे की है। तथ्य यह है कि व्यवहार प्रतिषेध्य है और निश्चयनय प्रतिषेधक है ऐसा अन्तर होनेका कारण यथार्थता और अयथार्थता है, विकल्पात्मकपना नहीं है। विकल्पात्मकपना होनेसे ही कोई प्रतिषेधक बने और कोई प्रतिषेध्य बने तब तो उक्त शङ्का ठीक हो सकती थी, लेकिन विकल्पात्मकताके आधार पर तो यहाँ प्रतिषेध्य और प्रतिषेधकपनेकी बात ही नहीं है, किन्तु जहाँ अयथार्थता है वह प्रतिषेध्य है, जहाँ यथार्थता नहीं है वह प्रतिषेधक है। प्रतिषेध करने वाले नयमें भी विकल्प पड़ा है लेकिन वह विकल्प निषेधक है और व्यवहारनयमें भी विकल्प पड़ा है, वह विकल्प प्रतिषेध्य है। अब इस हीं तथ्यको अगली गाथामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्पष्ट करते हैं।

व्यवहारः किल मिथ्या स्वयमपि मिथ्योपदेशकश्च यतः।
प्रतिषेध्यस्तस्मादिह मिथ्यादृष्टिस्तदर्थदृष्टिश्च ॥६२८॥

व्यवहारके प्रतिषेध्यत्वमें मिथ्योपदेशकत्वकी कारणता—व्यवहारनय मिथ्या होता है, क्योंकि वह स्वयं मिथ्या उपदेश करने वाला है। और, इसी कारण से व्यवहारनय अर्थात्, मिथ्योपदेशक वचन प्रतिषेध्य हैं दूर करने योग्य हैं और ऐसे व्यवहारनयके विषयपर जो दृष्टि देते हैं, तद्रूप श्रद्धा करते हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव हैं। जैसे कहा जीव ज्ञानवान है, तो ऐसा कथन करके जीवके स्वरूपपर दृष्टि पहुंचाने का प्रयास किया गया है। और, यहां प्रयास निश्चयनयके विषयका लक्ष्य करनेके लिए किया गया है। जीव परमार्थसे कैसा है मैं कैसा हूं ऐसा समझनेके लिए इस व्यवहारनयका प्रयास हुआ है कि मैं ज्ञानमात्र हूं, मैं ज्ञानवान हूं। लेकिन उस प्रयोजन को भूल जायें कोई और व्यवहारनयने जिस विधिसे कुछ कहा है उस ही विधिका आग्रह करले जैसे कि इस प्रसङ्गमें यह कहा गया कि जीव ज्ञान वाला है तो व्यवहारनयसे यह समझाया कि जीव एक पदार्थ है, ज्ञान भी एक पदार्थ है और ज्ञान जीव में पाया जाता है, ऐसा यदि कोई समझले तो भी जीवके तथ्यपर तो नहीं पहुंचे। बल्कि उसे जीवसे निराला और ज्ञानसे निराला समझ लिया। और, ऐसा यदि कोई समझ रखे तो उसे सम्यग्दृष्टि तो न कहा जा सकेगा। तो व्यवहारनय जिन वचनोंमें अपना विषय कहता है उन वचनोंका जितना अर्थ है उतने ही अर्थका अनुशरण करके केवल वही मान लेवे और प्रयोजनको भूल जाय तो उसका यह कथन मिथ्या हो जाता है। और, इसी कारण यह प्रतिषेध्य है जैसे कि निश्चयनयने बताया कि व्यवहारनयने जो कहा है सो परमार्थसे नहीं है। तो यों व्यवहार प्रतिषेध्य बना, अब उस व्यवहार-नय पर ही जो चले अनुशरण करे ऐसी श्रद्धा रखने वाला पुरुष मिथ्यादृष्टि है, उसको शान्तिका मार्ग मिलना असम्भव है।

स्वयमपि भूतार्थत्वाद्भवति स निश्चयनयो हि सम्यक्त्वम्।
अविकल्पवदतिवागिवस्यादनुभवैकगम्यवाच्यार्थः ॥ ६२९ ॥

यदि वा सम्यग्दृष्टिस्तद्दृष्टिः कार्यकारी स्यात्।
तस्मात् स उपोद्योनोपादेयस्यदन्यनयवादः ॥ ६३०॥

निश्चयनयकी यथार्थता व उपादेयता—निश्चयनय स्वयं यथार्थ विषयको प्रतिपादन करने वाला है, इसी कारण उसे भूतार्थ कहते हैं और वह सम्यकरूप होता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। इस ही निश्चय तत्त्वके आश्रयसे सम्यक्त्व प्रकट होता है। यद्यपि यह निश्चयनय विकल्पात्मक है इसमें निषेधरूप विकल्प पड़ा है तो भी वह अविकल्प जैसा ही होरहा है, क्योंकि निश्चयनय सब प्रकारके भेद विकल्पोंका निषेध करने वाला है। तो जहाँ समस्त भेददृष्टिसे हटाया वहाँ जो दृष्टिमें आया, दृष्टिमें आया इस कारण तो विकल्पात्मक है परन्तु वहाँ कोई विधिविकल्प है नहीं, इस कारण अविकल्प जैसा ही प्रतीत होता है। निश्चयनय वस्तुत: वचनके अगोचर है। यद्यपि निश्चयनयका विषय यहाँ निषेध बताया गया है, वह प्रतिषेधगम्य है। यों निषेधरूप वचनको उसका विषय बताया है फिर भी वह वचनके अगोचर जैसा ही है। निश्चयनयका वाच्य क्या है? इस नयने किस विषयको समझा है? यह बात तो अनुभवगम्य है। अनुभवसे निश्चय नयके विषयका बोध होता है। यद्यपि अनुभवकी दशा निर्विकल्प दशा है और निश्चय नयकी दशा सविकल्प दशा है फिर भी निश्चयनयके प्रकरणमें कौन सा तत्त्व आया? इसका स्पष्ट परिचय अनुभवका ही हो पाता है। अतएव निश्चयनय वचनके अगोचर माना गया है। वचनके द्वारा जो कुछ कहा जायगा वह समस्त विवेचन किसी न किसी प्रकारसे बोधरूप ही होगा और वह विवेचन व्यवहारनयका ही विषय बनेगा। अत: यह निर्णय बना कि निश्चयनय निषेधरूपसे ही वक्तव्य है। विशेष निश्चयनय वचनके अगोचर है, ऐसा निश्चयनयके विषयका श्रद्धान करने वाला जीव सम्यग्दृष्टि है और वही कार्यकारी है। अपनी अनन्त प्रभुताका विकास कर सदाके लिए ज्ञानानन्दमय हो जाता है। तो जिसकी दृष्टि जिसके आश्रयसे निर्मल पर्यायोंका प्रवाह चल उठता है ऐसा वह निश्चयनय उपादेय कहा गया है। और इस निश्चयनयके अतिरिक्त जितने भी नयवाद हैं वे व्यवहारवाद हैं और अग्राह्य हैं। उसके विषयभूत भेदका आश्रय करनेसे शान्ति अथवा मोक्षकी अवस्था प्रकट नहीं होती है। यों निश्चयनय यथार्थ है और व्यवहारनय मिथ्या है। इसी कारण निश्चयनयको प्रतिषेधक कहा है और व्यवहारनयको प्रतिषेध्य कहा है।

ननु च व्यवहारनयो भवति स सर्वोऽपि कथमभूतार्थः।
गुणपर्ययवद्द्रव्यं यथोपदेशात्तथानुभूतश्च ॥ ६३१ ॥

अथ किमभूतार्थत्वं द्रव्याभावोऽथवा गुणाभावः।
उभयाभावो वा किल तद्योगस्यात्प्रभावसादिति चेत्। ६३२।

वस्तुस्वरूपप्रतिपादक व्यवहारनयकी अभूतार्थताके कारणकी जिज्ञासा यहाँ शङ्काकार कहता है कि व्यवहारनय सारा ही कैसे अभूतार्थ हो जायगा? जैसे व्यवहारनयमें यह उपदेश है कि द्रव्य गुण पर्याय वाले होते हैं और ऐसा उपदेश सर्वज्ञदेव और महर्षियों द्वारा हुआ है और अनुभव भी यह बताता है कि प्रत्येक पदार्थ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुण पर्यायात्मक होता है। केवल गुण रूप ही पदार्थ नहीं अर्थात् वहाँ यदि परिणमन नहीं है तो कुछ भी सत्त्व नहीं है और यदि गुण नहीं है तो परिणमन ही क्या हो ? वहाँ भी सत्त्व न रहेगा। तो गुण पर्याय वाला द्रव्य है ऐसा जो उपदेश है वह व्यवहारनयका उपदेश है। अब यहाँ कोई यह बताये कि इस उपायमें गलती क्या है और किस बातसे यह व्यवहारनय अभूतार्थ बन जाता है बताये ? कोई कि क्या द्रव्यका अभाव है जिससे कि द्रव्यकी बात कही जानी मिथ्या बन जाय, अथवा गुणका अभाव है ? जिससे कि गुणके अद्भावका वचन मिथ्या बनाया जाय ? या दोनोंका अभाव है जिससे कि गुण पर्ययवत् द्रव्यं, इस सिद्धान्तको मिथ्या कहा जाय ? किसका अभाव है ? अथवा क्या उन दोनोंके मेलका अभाव है, अर्थात् गुण पर्याय दोनों एक साथ एक वस्तुमें न रह सकें, क्या ऐसी बात है ? कौनसा कारण है जिससे कि यह कहा जा सके कि गुण पर्ययवत् द्रव्यं इस प्रकार महर्षिजनोंका जो उपदेश है, व्यवहारनयका जो कथन है वह मिथ्या हो जाय। और जब ये सब अभाव नहीं मालूम होते, गुण भी हैं, पर्याय भी विदित होती है और सदा गुण पर्यायात्मक है तब इस व्यवहारनयके उपदेशको मिथ्या अथवा अभूतार्थ क्यों कहा जा रहा है ? अब इस शङ्काके उत्तरमें कहते हैं।

सत्यं न गुणाभावो द्रव्याभावो न नोभयाभावः ।
न हि तद्योगाभावो व्यवहारः स्यात्तथाप्यभूतार्थः ॥६३३॥

वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन किया जानेपर भी व्यवहारनयकी अभूतार्थताका कथन—शङ्काकारने ऐसा पूछकर कि क्या गुणका अभाव है या द्रव्यका अभाव है या दोनोंके मेलका अभाव है ? यह सब पूछकर उसका इस प्रकारसे उत्तर न मिलेगा। ऐसी समझ बनाकर यह पोषण किया है कि व्यवहारनय यथार्थ होता है, वह मिथ्या नहीं है। इस शङ्काका समाधान इस गाथामें दिया है। शङ्काकारका यह कहना यद्यपि ठीक है, गुणका अभाव नहीं है, द्रव्यका भी अभाव नहीं है, दोनोंका भी अभाव नहीं है और दोनोंके मेलका भी अभाव नहीं है, इतनेपर भी व्यवहारनय मिथ्या ही होता है। मिथ्या होनेका कारण क्या, है इस बातको अगली गाथामें बतायेंगे पर संक्षेपमें यह समझ लेना चाहिए कि जिस प्रणालीसे किसी भी प्रकारका भेद सिद्ध होता हो तो वह प्रणाली अभूतार्थ कही जायगी। क्योंकि वस्तुमें कहीं भी भेद पड़ा हुआ नहीं है। यह व्यवहारनयकी अभूतार्थताकी कुञ्जी है। जहाँ भी अभूतार्थता सिद्ध होती हो वहाँ यह बात मिलेगी कि अभेद वस्तुमें किसी भी प्रकारका भेद करनेका प्रयत्न किया गया है। यावत भेद है वह सब व्यवहार है, इसी कुञ्जीके अनुसार शंकाकारकी शङ्काके समाधानका स्पष्टीकरण अब अगली गाथाओंमें दिया जा रहा है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इदमत्र निदानं किल गुणवद्द्रव्यं यदुक्तमिह सूत्रे ।
अस्ति गुणोस्ति द्रव्यं तद्योगात्तदिह लब्धमित्यर्थात् । ६३४ ।

तदसन्न गुणोस्ति यतो न द्रव्यं नोभयं न तद्योगः ।
केवलमद्वैतं सद्भवतु गुणो वा तदेव तद्द्रव्यम् ॥ ६३५ ॥

लक्षणप्रतिपादक व्यवहारनयकी भी अभूतार्थताके कारणका स्पष्टीकरण गुणपर्ययवत् द्रव्यं इस प्रकारका आश्रय लेकर जो संतजनोंका उपदेश है वह यद्यपि कार्यकारी है, परमार्थ वस्तुकी ओर लक्ष्य करानेका इसमें प्रयास भरा है लेकिन जिन शब्दोंमें यह उपदेश है वे शब्द यह बतलाते हैं कि यह व्यवहारनय मिथ्या है, क्योंकि इसमें यही तो कहा गया है कि द्रव्य गुणपर्याय वाला है। जहाँ यह बात आई कि द्रव्य गुण वाला है तो उससे ऐसा ही अर्थ ध्वनित होता है कि गुण कोई चीज है, द्रव्य कोई चीज है और फिर गुणके मेलसे यह द्रव्य गुण निराला कहलाया लेकिन बात ऐसी है कहाँ ? पदार्थ तो अपने आपमें अद्वैत सत् है। तब पर्यायकी बात कहकर उपदेश किया है कि द्रव्य पर्याय निराला है। वहाँ भी यही अर्थ ध्वनित होता है कि पर्याय कुछ चीज है और द्रव्य कुछ चीज है। फिर उन पर्यायोंका मेल करानेपर यह द्रव्य पर्याय वाला कहलाता है। लेकिन पर्याय क्या कोई भिन्न वस्तु है और द्रव्य कोई उससे जुदी चीज है ? इस लक्षणमें जो कुछ जिन शब्दोंसे कहा गया है उन्हीं शब्दोंके अनुसार समझ बनानेपर विशेषवादका प्रसङ्ग आता है। जब कहा कि द्रव्य गुण पर्याय वाला है तो वहां भी यही समझिये कि परमार्थतः न तो कोई गुण वस्तु है और न केवल कोई द्रव्य वस्तु है, न दोनों हैं, न उन दोनोंका योग है। किन्तु केवल वह एक अद्वैत सत् है। अब चाहे कोई गुणको दृष्टि रखकर सत् गुण कहे, चाहे कोई द्रव्यकी दृष्टि रखकर सत् द्रव्य कहे पर वस्तुतः तो वहाँ अनिर्वचनीय अद्वैत सत् है। तो वस्तुमें कोई ऐसा भेद भी पड़ा हुआ है और ये व्यवहारनयके लक्षण उन भेदोंकी बात बताते हैं इस कारणसे यह व्यवहारनय मिथ्या कहलाता है। यहाँ निर्णय इस प्रसङ्गके अन्तमें इस गाथामें दिया है।

तस्मान्न्यायागत इति व्यवहारः स्यान्नयोप्यभूतार्थः ।
केवलमनुभवितारस्तस्य च मिथ्यादृशो हतास्तेपि ॥ ६३६ ॥

व्यवहारनयके अभूतार्थत्वका व व्यवहारनयके अनुभविताओंके मिथ्यादृष्टित्वका निर्णय-- उक्त गाथामें जो युक्ति दी है उस युक्तिके अनुसार यह बात न्यायसे प्राप्त हो चुकती है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है, क्योंकि व्यवहारनय भेदका साधन करता है और भेदरूपसे दृष्टि बनानेपर उपयोगकी निर्मलता नहीं बनती।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभेद वस्तु आश्रयानीय नहीं हो पाता। इस कारण भेदकी सिद्धि करने वाला व्यवहारनय अभूतार्थ है। जो लोग केवल इसी व्यवहारनयका आश्रय करते हैं ऐसे ही भेद का अनुभव करते रहते हैं वे तो बरबाद हो जाते हैं, क्योंकि शान्तिका मार्ग मिल नहीं पाता और भ्रमका क्लेश सहते रहते हैं। यों व्यवहारनयका आलम्बन करने वाले पुरुष मिथ्यादृष्टि हैं। व्यवहारका प्रतिषेध करके निश्चयनयने जिस तत्त्वको दिखाया है उस तत्त्वका आश्रय करनेसे सम्यक्त्व होता है और उत्तरोत्तर प्रकाश होकर उसकी स्थिरतामें रत्नत्रयकी पूर्णता बनती है। यों निश्चयनय भूतार्थ है और व्यवहारनय अभूतार्थ है। यह प्रकरण यहाँ निर्दोष सिद्ध होता है।

ननु चैवं चेन्नियमादादरणीयो नयो हि परमार्थः।
किमकिञ्चित्कारित्वाद् व्यवहारेण तथाविधेन यतः॥ ६३७॥

अभूतार्थ होनेपर भी व्यवहारनयकी वाच्यताके कारणकी जिज्ञासा— अब यहाँ शङ्काकार यह कह रहा है कि जब व्यवहारनयका अनुभव करनेसे बरबादी है और व्यवहारनयका आलम्बन करने वाले मिथ्यादृष्टि है। यों जब व्यवहारनय मिथ्या ही है तब तो केवल निश्चयनयका ही आदर करना चाहिए और जब व्यवहार नय कुछ भी करनेमें समर्थ न रहा वह मिथ्या ही है तो उसे फिर सर्वथा कहना ही न चाहिए। व्यवहारनयका फिर प्रयोग किया ही क्यों जा रहा है? उक्त प्रसङ्गोंसे यह विदित हो रहा है कि व्यवहारनय मिथ्या है, आदरके योग्य नहीं। तो इतने तिरस्कृत किये गए व्यवहारनयका फिर प्रयोग क्यों किया जा रहा है, इसका समाधान करते हैं।

नैवं यतो बलादिह विप्रतिपत्तौ च संशयापत्तौ।
वस्तुविचारे यदि वा प्रमाणमुभयावलम्बितज्ज्ञानम्॥ ६३८॥

व्यवहारनयकी वाच्यतामें वस्तु विचारार्थताकी कारणरूपता— शङ्काकारकी उक्त शङ्का यों सङ्गत नहीं है कि जब किसी विषयमें विवाद हो जाय अथवा किसी विषयमें संदेह हो जाय तब व्यवहारनयका आलम्बन बलात लेना ही पड़ता है। उस समय व्यवहारनयका आलम्बन लिए बिना समस्या नहीं सुलझती। किसी तत्त्वके स्वरूपमें विवाद हो गया, अब वह विवाद तो किसी प्रतिपादनसे ही तो समझा जायगा। युक्ति विशेषण भेद सभी दृष्टियोंसे उसे समझाना पडेगा तब विवाद शान्त होगा। और जब किसी शब्दका बोलना भी व्यवहार हो गया तो निश्चयनय प्रतिबोधका कारण तो न बना कि दूसरेको यह समझा देवें तो विवाद जैसी परिस्थिति होनेपर व्यवहारनयका ही आलम्बन लेना पड़ता है। इसी प्रकार किसी विषय में संदेह हो गया तो वह भी विवादकी ही चीज है। तो संशय होनेपर जो समझने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समझानेकी दशा बनेगी तो व्यवहारनयका आलम्बन करके ही बनेगी। तो वहाँ व्यवहारनय आवश्यक हो गया। इसी प्रकार जब वस्तुका विचार करनेको ही बैठेंगे तो उस विचार करनेके प्रसङ्गमें भी व्यवहारनयका आलम्बन अवश्य लेना होगा और फिर यह भी समझ लीजिये कि वही ज्ञान प्रमाण कहला सकता है जो ज्ञान निश्चयनय और व्यवहारनय दोनोंका आलम्बन लेता हो। सम्यग्ज्ञान तब ही अपनी सब कलाओं से युक्त हो पाता है जबकि निश्चयनय और व्यवहारनय दोनोंका आलम्बन करके बोध किया गया हो। केवल व्यवहारनयका आलम्बन करना जैसे प्राणियोंको कुमार्गमें ले जाने वाला बन जाता है, यों ही व्यवहारनयके बिना निश्चयनयका ही आलम्बन करनेमें प्रमाणता नहीं आ पाती है। व्यवहारनयका आलम्बन लिए बिना (पदार्थका विचार ही नहीं हो सकता है। अतः व्यवहारनयका निरूपण आवश्यक हो जाता है। यहाँ कोई यह भी शंका कर सकता है कि जब व्यवहारनय मिथ्या है तो व्यवहारनय के द्वारा जो वस्तुका विचार बनता है, जो भी कथन होता है वह भी मिथ्या ही होगा तब भी व्यवहारकी क्या आवश्यकता रही ? लेकिन यह शंका किसी अंशमें ठीक हो सकती है, परन्तु तथ्य यह है कि बिना व्यवहारके वस्तुका विचार हो ही नहीं सकता, कुछ भी निरूपण न करें तो यह कैसे जाना जायगा कि पदार्थ अनन्त गुणात्मक है ! पदार्थ परिणामी है। इस सबका परिज्ञान व्यवहारनयके द्वारा पदार्थको जानकर ही तो यथार्थताका बोध होगा। या सरल शब्दोंमें यों कह लीजिये कि व्यवहार पूर्वक ही आत्मा निश्चयनयपर आरूढ़ होता है। यद्यपि व्यवहारनयकी जो विवेचना है उसे यथार्थ न कहेंगे लेकिन विवेचनके द्वारा यथार्थताका बोध होता है। जैसे कि कोई अंगुलीके इशारेसे चन्द्रमाको दिखाये तो अंगुलीका इशारा यह खुद चन्द्रमा न कहलायेगा, लेकिन उस सहारेसे चन्द्रमाका बोध होता है। यों ही व्यवहारनयके आलम्बनसे यथार्थ स्वरूपका परिचय कराया जाता है। तब व्यवहारनयने जो कुछ बताया है वह वस्तुकी यथार्थता नहीं है किन्तु विवेचनाके बिना यथार्थताका बोध भी नहीं होसकता इसी कारणसे व्यवहारनय आदरणीय है और व्यवहारनयका प्रयोग करना श्रेयस्कर भी है। निषेध तो इस बातका किया जा रहा है कि व्यवहारनय जो कुछ कहता है उसे एक लक्ष्यका संकेत समझना चाहिए। ठीक उसी रूपसे, भेदरूपसे वस्तु यही पूर्ण है इस तरह न मान लेना चाहिए यों व्यवहार निश्चयका साधक होनेसे आदरणीय है।

तस्मादाश्रयणीयः केषाञ्चित् स नयः प्रसङ्गत्वात् ।
अपि सविकल्पानामिव न श्रेयो निर्विकल्पबोधवताम् ॥६३९॥

प्राक् पदवीमें व्यवहारनयकी आश्रयणीयताका प्रतिपादन—व्यवहारनय आदर करने योग्य है अथवा नहीं है इस सम्बन्धमें ये दोनों ही निर्णय हैं। किन्हीं २ जीवोंको तो व्यवहारनय आश्रय करने योग्य है। जिस प्रसङ्गमें वे पड़े वे उस प्रसङ्गके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

माफिक उनको व्यवहारनय आवश्यक है। अर्थात् जो सविकल्प ज्ञान वाला है ऐसे प्राणियोंके लिए व्यवहारनय आश्रय करने योग्य है, किन्तु निर्विकल्प बंध वालेके लिए व्यवहारनय हितकारी नहीं है। सविकल्प ज्ञान पूर्वक जो पुरुष निर्विकल्प ज्ञानमें पहुंच गए हैं अब उन पुरुषोंको व्यवहारनयकी शरण नहीं लेनी होती। जो निर्विकल्प समाधिभावमें स्थित है, आत्मानुभवका अलौकिक आनन्दरस ले रहे हैं उनको सकेला होना बुरा है, उनमें तरङ्ग आना बुरा है, यों ही समझ लीजिए कि व्यवहारनयका वे आश्रय करने लगे तो आत्माश्रय जैसे वैभवसे हटकर एक दरिद्रतामें लग गए हैं। तो व्यवहारनय किन्हीं किन्हीं पुरुषोंको आश्रय करने योग्य है किन्तु निर्विकल्प ज्ञानमें ही जो आ गए पुरुषोंको व्यवहारनय करनेके योग्य नहीं है, जैसे एक स्थूल उदाहरण समझिये कोई पुरुष मंदिरकी दूसरी मंजिल पर जा रहा है तो उस पुरुषको ये सीढियाँ आश्रय करना योग्य है या नहीं ? ऐसा एक साधारण प्रश्न सामने रखा जाय तो वहाँ एकान्ततः उत्तर कुछ न बन सकेगा। यदि यह कहा जाय कि वे सीढ़ियाँ आलम्बन करनेके योग्य हैं तो इसका यह अर्थ लगाया जा सकेगा कि किसी भी सीढ़ीको पकड़ कर रह जायें क्योंकि वे तो आश्रय करनेके योग्य हैं ? यदि यह उपदेश किया जाय कि सीढ़ियाँ आश्रय करनेके योग्य नहीं है तो कोई नीचे खड़ा हुआ कोई आलसी पुरुष बड़े मजेमें इस आज्ञाका पालन कर सकता है। सीढ़ियाँ तो आश्रय करनेके योग्य नहीं हैं ऐसा बताया है बडे पुरुषोंने तो हम सीढियोंको छुवें ही क्यों ? उनपर चढ़े ही क्यों ? ऐसा आग्रह करके वह नीचे बैठा ही रहे तो भी वह मन्दिरमें न जा सकेगा। सीढियोंका आलम्बन करनेका एकान्त करे तो भी वह मन्दिरमें न पहुंच पायगा। सीढियाँ आलम्बन करने योग्य ही नहीं हैं ऐसा आग्रह करके दूर रहे तो भी वह मन्दिर न पहुंचेगा। तो करना क्या चाहिए कि जब बिल्कुल नीचे हैं तो उन सीढियों का आश्रय करना चाहिए, उनपर चढना चाहिए और जिस सीढी पर चढ गए हैं उसको छोड़कर अगली सीढोपर चढना चाहिए। इस तरह आलम्बन की हुई सीढीका परित्याग करते जाना चाहिए। तब मन्दिरमें पहुंचकर प्रभुके दर्शन हो सकते हैं। ऐसे ही यहाँ जाने जिनका अभी वस्तु स्वरूपमें पूरा प्रवेश नहीं हैं अथवा उस स्वरूप की उपासनाका अभ्यास नहीं बन पाया हैं ऐसे पुरुषोंको व्यवहारका आश्रय करना चाहिए, कब तब, जब तक कि वीतरागता और विज्ञान प्रकट न हो जाय। तो निर्णय यह रहा कि व्यवहारनय प्राथमिक पुरुषोंको आलम्बन करने योग्य है, किन्तु निर्विकल्प समाधिमें ठहरे हुए पुरुषोंको व्यवहारनयका आलम्बन करना योग्य नहीं है। इस तरह परमार्थ तो निश्चयनय है और उसकी प्राप्तिके लिए व्यवहारननका प्रयास है।

ननु च समोहितसिद्धिः किल चैवस्मान्नयात्कथं न स्यात्।
विप्रतिपत्तिनिरासोवस्तु विचारश्च निश्चयादिति चेत् ॥६४०॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चयनयसे ही विवादपरिहार, वस्तुविचार, समीहित सिद्धि न हो जानेके कारणकी जिज्ञासा—अब शङ्काकार पुनः कहता है कि इष्ट सिद्धिके लिए, विवादका परिहार करनेके लिए, वस्तुका विचार बनानेके लिए निश्चयनयका आश्रय किया जा रहा है। तो ये सब बातें निश्चयनयसे ही क्यों नहीं मान ली जाती ? निश्चयनयके आलम्बनसे विवाद मिट जायगा। संशय दूर हो जायगा, वस्तुका विचार भी बन जायगा। तो यों निश्चयसे सब बातें मान ली जानेपर फिर व्यवहारनयकी आवश्यकता न रहेगी। विवाद परिहार, संशय विनाश वस्तु विचार ये सभी निश्चय-नयसे-ही हो जायेंगे, इस कारण केवल निश्चनय ही मानना चाहिए। व्यवहारनयकी तो बात कहना मिथ्यानय है और अकार्यकारी है। इस प्रकार शङ्काकारने पुनः अपनी शङ्का दोहराई कि सब कुछ हित जब निश्चयनयसे मिलता है तो उपदेश निश्चयनयका ही करना चाहिए, व्यवहारनयका कथन करना तो असङ्गत मालूम होता है।

नैवं यतोस्ति भेदोऽनिर्वचनीयो नयः स परमार्थः।
तस्मातीर्थस्थितये श्रेयान् कश्चित् स वावदूकोपि ॥६४१॥

निश्चयनयकी अनिर्वचनीयताके कारण तीर्थ स्थितिके लिये व्यवहार-नयकी हितकारिता—अब उक्त शङ्काका समाधान करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि ऊपर जो शङ्का उठाई गई है वह ठीक नहीं है, क्योंकि निश्चयनय और व्यवहार-नय इन दोनोंमें भेद है। निश्चयनय तो वचनके अगोचर है, निश्चयनयके द्वारा पदार्थका विवेचन किया ही नहीं जा सकता इसी कारण धर्म या दर्शनकी स्थिति लिए हुए वस्तु स्वभावको जाननेके लिए बोलने वाला जो व्यवहारनय है सो यह व्यव-हारनय हितकारी है। व्यवहारनयको यहाँ बावदूक बतलाया है अर्थात् बोलने वाला, तो बोलने वाला होकर भी व्यवहारनय हितकारी है। क्योंकि इसके ही प्रतापसे धर्म और दर्शनकी स्थिति होती है। निश्चयनय तो एक वस्तुके सहज स्वभावका दर्शन कराता है। यद्यपि कोई यही करता रहे और कुछ भी न करे, इस स्थितिमें उसका कल्याण है, लेकिन जब पहिले परिज्ञान ही नहीं है तो निश्चयनयका प्रतिबोध कैसे सहज बने ? उसके लिए व्यवहारनय सहयोगी है। यह व्यवहारनय निश्चयनयके तथ्य पर प्रकाश देता है।

ननु निश्चयस्य वाच्यं किमिति यदालम्ब्य वर्तते ज्ञानम्।
सर्वविशेषाभावेऽत्यन्ताभावस्य वै प्रतीतत्वात् ॥६४२॥

सर्व विशेषोंका अनालम्बन होनेसे निश्यनयके अविषयत्व व अभाव की आशंका—शङ्काकार कहता है कि निश्चयनयका वाच्य है क्या ? स्पष्ट बताओ,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिसका आलम्बन करके ज्ञान किया जा रहा है ? निश्चयनय भी तो एक ज्ञान है और ज्ञान किसीको विषय करता हुआ रहता है तो निश्चयनयमें वह विषय क्या है जिसका आलम्बन करके बने हुए ज्ञानको निश्चयनय कहते हैं। अभी जितना कथन आया है उससे यह विदित हो रहा है कि निश्चयनयका विषय कुछ नहीं है। किन्तु व्यवहारनय जो कुछ कहे उसका निषेध करना ही काम है। तो व्यवहारनयके कथन का निषेध करता जाय इतने मात्रसे निश्चयनयके विषय की पुष्टि तो नहीं होती है। आखिर निश्चयनयने समझा क्या है ? तो निश्चयनयका वह वाच्य बतलाईये ? अब तक तो ऐसा मालूम हुआ कि निश्चयनयका विषय कुछ है ही नहीं, अत्यन्ताभाव है निश्चयनयके विषयका और जब विषयका अत्यन्ताभाव है तो निश्चयनयका भी अत्यन्ताभाव हो जायगा। केवल व्यवहारका निषेध करता है निश्चयनय इतना कहने मात्रसे काम न बनेगा। जिसे हितकारी माना जा रहा है ऐसे निश्चयनयका विषय तो कुछ सामने आना चाहिए। अब इस शङ्काका समाधान करते हैं।

इदमत्र समाधानं व्यवहारस्य च नयस्य यद्वाच्यम् ।
सर्वविकल्पाभावे तदेव निश्चयनयस्य यब्दाच्यम् ॥६४३॥

व्यवहारनयके वाच्यनेसे सर्व विकल्पोंको दूर कर देनेपर व्यवहारनय वाच्यकी ही निश्चयनयवाच्यता—उक्त शङ्काका समाधान यह है कि देखिये ! व्यवहारनयका जो कुछ भी वाच्य है, व्यवहारनयने जो कुछ भी प्रतिपादन किया है सो वहाँ सर्व विकल्पोंको दूर हटा लीजिए और सर्व विकल्प दूर होनेपर फिर जो वाच्य रहता है वही निश्चयनयका वाच्य है। निश्चयनयका यथार्थतया वाच्य कौन है उसको केवल आत्माकी कुछ बात ही कहकर कैसे बताया जाय ? बाह्य पदार्थका अथवा भेद का आलम्बन करना ही पड़ेगा। तो वहाँ वह व्यवहारनय बन जायगा। ऐसे ऐसे व्यवहारनयके विकल्प जब नहीं रहे तो जो कुछ उस प्रतिपादनसे बचा वह निश्चयनय का विषय है। यों निश्चयनयका विषय अवाच्य हुआ और व्यवहारनयका विषय वाच्य हुआ। इसी बातको अब एक दृष्टान्त द्वारा पुष्ट कर रहे हैं।

अस्त्यत्र च संदृष्टिस्तृणाग्निरिति वा यदोष्ण एवाग्निः ।
सर्वविकल्पाभावे तत्संस्पर्शादिनाप्यशीतत्वम् ॥६४४॥

दृष्टान्त द्वारा निश्चयनय वाच्यत्वका पुष्टीकरण—निश्चयनयका वाच्य क्या है इसका परिज्ञान करानेके लिए यह दृष्टान्त दिया जा रहा है जैसे कोई कहे कि तृण अग्नि है, ऐसा कहनेपर भी वह अग्नि है, अग्नि कहते उसे हैं जिसमें उष्ण स्पर्श अधिक हो और उष्णस्पर्शकी तीव्रताके कारण उसके निकट भिड़ा हुआ पदार्थ दग्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो जाय। तृणकी अग्नि है तब भी अग्नि ही है, कंडेकी अग्नि है तब भी अग्नि ही है कोयलेकी अग्नि है तो वह भी उष्ण अग्नि है। अब जरा उष्ण अग्निमेंसे तृणका, कंडेका, कोयलेका विकल्प दूर कर दीजिए। तृण अग्नि है यहाँ तृणका विकल्प दूर कर दिया जाय, केवल अग्निको ही दृष्टिमें लिया जाय तो वह उष्ण ही प्रतीत होगी विशेषण हटा दिया फिर भी वह आग ही है जो जला देती है। अब यहाँ विचार करिये—तृणकी आग है. यह कथन क्या यथार्थ है ? नहीं है यथार्थ। क्योंकि जिस समय तृण आगमय बन गई उस समय तो यह तृण ही न रहा, किन्तु आग ही है और जिस समय आगरूप नहीं परिणमा उस समय वह तृण है, आग नहीं है। इसी कारण तृण आदिक विकल्पोंको दूर कर देना ही ठीक है, फिर भी आग है ऐसा प्रतिबोध करनेके लिए तृण आदिकका व्यवहार होना आवश्यक है। यही दृष्टान्त निश्चयनय घटित होता है। जो व्यवहारनयका विषय है वह विकल्पात्मक है। अब विकल्पोंको दूर करें और जिसका लक्ष्य किया वही दृष्टिमें रहने दिया जाय तो वह निश्चयनयका विषय बन जाता है। जैसे गुण पर्याय वाला द्रव्य है तो कोई पर्याय आदिक भेद निश्चयनयकी दृष्टिमें मिथ्या है, क्योंकि निश्चयनयकी दृष्टिमें गुणात्मक अखण्ड पिण्ड ही है। उसे तो वचनोंसे नहीं कह सकते। तो इसको समझानेके लिए जो भेद व्यवहारसे प्रतिपादन किया है वह व्यवहारनयका विषय है और उस विकल्पका निषेध करके निश्चयनयका विषय प्रकट होता है। सो व्यवहारनयका निषेध करता है निश्चयनय। इन शब्दोंसे केवल निषेध ही न लेना, केवल अभावात्मक अर्थ न लेना, किन्तु शुद्ध द्रव्य निश्चयनयका विषय है जिसको लक्ष्य करके व्यवहारनयने समझानेका प्रयास किया है।

ननु चैवं परसमयः कथं स निश्चयनयावलंबी स्यात्।
अविशेषादपि स यथा व्यवहारनयावलंबी यः ॥६४५॥

निश्चयनयावलम्बीको भी मिथ्यादृष्टि कहनेके कारणकी जिज्ञासा—यहाँ शङ्काकार कहता है कि व्यवहारनयका आलम्बन करने वालेको मिथ्या दृष्टि बताया है सो ठीक है, वहां तो विषय अनेक हैं परन्तु निश्चयनयका आलम्बन करने वाला भी अर्थात् केवल निश्चयनयका आग्रह करने वाला भी मिथ्यादृष्टि बताया गया सो वह किस प्रकार ? स्थूल रूपसे सभी समझ शक्तिके व्यवहारनय असद्भूतका वर्णन करते हैं तथा सदभूतमें भी भेद प्रकट करते हैं। सो वस्तु भेदरूप नहीं और असद्भूत ही नहीं तब वस्तुको उस प्रकार कहना व्यवहारनय है तो वह मिथ्या है लेकिन व्यवहारनय तो एक अखण्ड वस्तुपर लक्ष्य कराता है और वचनों द्वारा भी केवल निषेधरूपमें प्रवृत्त होता है। तो ऐसा निश्चयनयका अवलम्बन करने वाले जीव को मिथ्यादृष्टि कहा गया है। इस शङ्काके समाधानमें कहते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सत्यं किन्तु विशेषो भवति स सूक्ष्मो गुरुपदेश्यत्वात् ।
अपि निश्चयनयपक्षादपरः स्वात्मानुभूतिमहिमा स्यात् ।६४६।

निश्चयनयपक्षकी अनादेयताका कारण पक्षातिक्रान्त स्वानुभूतिकी महिमा—शङ्काकारका कहना उसकी दृष्टिमें सत्य है क्योंकि स्थूलरूपसे परखमें भी यही बात आती है कि व्यवहारनय अनेकको विषय करता है। असद्भूतको विषय करता है, अभेद वस्तुमें भेदकी प्रक्रिया बनाता है। अतः व्यवहारनयका आलम्बन करनेका अर्थ यह है कि वस्तु जिस प्रकार है उससे विपरीत तत्त्वका आलम्बन किया। अतएव मिथ्या है और उसकी ओर दृष्टि बनाये सो मिथ्यादृष्टि है और निश्चयनय एक अखण्ड वस्तुपर लक्ष्य कराता है अतएव उसका विषय एक है और उस एकका आलम्बन जो करता है वह सम्यकदृष्टि होता है, ऐसा कथन भी आया है। इन बातों से यद्यपि यह बात शङ्काकारकी ठीक जच रही, फिर भी सूक्ष्म दृष्टिसे विचारा जाय तो निश्चयनयसे भी विशेष कोई बात है और वह सूक्ष्म है और वह गुरुजनोंके ही उपदेशके लायक है, उसे बड़े बड़े महर्षिजन उपदेश कर सकते हैं और फिर भी सुनने वाले वचनोंका लक्ष्य रखकर उसका अर्थ स्पष्टरूपसे नहीं समझ सकते। सिवाय स्वात्मानुभूतिके और कोई उपाय नहीं है कि अखण्ड निज तत्त्वका स्पष्ट अनुभवात्मक परिचय हो जाय और उसके स्वरूपको कोई महान् गुरु ही बतला सकता है। यों साधारण वचनों द्वारा उसका कथन भी नहीं हो पाता है। तो निश्चयनयसे भी विशेष परिणति है स्वात्मानुभूतिकी। और स्वात्मानुभूतिमें जो अनुभव होता है ऐसे अनुभव वाले पुरुषको सम्यकदृष्टि कहते हैं। निश्चयनय भी एक पक्ष है और वह है यद्यपि अभिन्न अखण्ड वस्तुका निकटवर्ती पक्ष, किन्तु जब तक उसका आग्रह है वह भी एक प्रकारसे वस्तुसे अलग पड़ा हुआ है। दोनों पक्षोंसे रहित होकर स्वात्मानुभूतिकी महिमासे यह पुरुष उस तत्त्वको जान सकता है जिसकी प्राप्तिसे सम्यकदृष्टि कहलाता है।

उभयं णयं विभणियं जाणइ णवरं तु समय पडिवद्धो ।
णदु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो ॥१॥

इत्युक्तसूत्रादपि सविकल्पत्वात्तथानुभूतेश्च ।
सर्वोपि नयो यावान् परमनयः सच नयावलंबी ॥६४७॥

नयपक्षावलम्बीकी परसमयताके कथनका उद्धरण—व्यवहारनयका अवलम्बन करने वालेको मिथ्यादृष्टि कहा गया है। इसमें तो शङ्काकारको विवाद

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं। निश्चयनयावलम्बीको मिथ्यादृष्टि कहा है, इस विषयमें शङ्काकारको विवाद हुआ है। उस विवादका समाधान कुछ ऊपर कहा गया है। उसकी पुष्टिमें समयसार ग्रन्थकी एक गाथा दी गई है जिसका अर्थ यह है कि जो दो प्रकारके नय कहे गए हैं, उन नयोंको सम्यग्दृष्टि जानता तो है परन्तु वह किसी भी नय पक्षको ग्रहण नहीं करता, वह नयपक्षसे रहित है, वह अपने सम में ही प्रतिबद्ध है। इस गाथारूप सूत्रसे भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि सम्यग्दृष्टि निश्चयनयका भी आलम्बन नहीं करता। हाँ यह बात अवश्य है कि निश्चयनयके विषयपर दृष्टि रखने वाले पुरुषको सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। परन्तु निश्चयनयका पक्षरूप विकल्प तो सम्यग्दर्शन नहीं है इस कारण निश्चयनयके विकल्पका ही आग्रह करने वाला पुरुष सम्यग्दृष्टि नहीं किन्तु मिथ्यादृष्टि है। अब दूसरी पद्धतिसे इसका समाधान देखिये ! व्यवहारनयको सविकल्प ज्ञान कहा है, इसी तरह निश्चयनयको भी सविकल्प ज्ञान बताया गया है। इस विषयमें पहिले स्पष्टरूपसे बता ही दिया गया था कि जितने भी ज्ञान विकल्प हैं वे सब नय हैं और वे अपरमार्थ हैं। तो सविकल्प ज्ञानरूप होनेसे जैसे व्यवहारनय मिथ्या है उसी प्रकार निश्चयनय भी मिथ्या सिद्ध होता है। जितने भी नय हैं सभी परसमय कहलाते हैं। स्वसमयसे बाह्य तो मिथ्या कहलाता है। तब उन नयोंका अवलम्बन करने वाला भी मिथ्यादृष्टि ही सिद्ध हुआ। कब नय सम्यक है ? कब नय मिथ्या है ? सब समय नय मिथ्या है। कुछ नय मिथ्या है कुछ नय सम्यक हैं। सभी प्रकारके वर्णन हैं और उन सबकी दृष्टियाँ जब परखमें आ जाती हैं तो निर्विवाद यह सब कथन प्रमाणसिद्ध प्रतीत हो जाता है। नयोंका समूह प्रमाण है निरपेक्षनय मिथ्या है, सापेक्ष नय सम्यक है। नयके स्वरूपमात्रसे सभी नय मिथ्या हैं आदि अनेक कथन अनेक स्थलोंमें आते हैं। उन सब समस्याओंका पार नहीं पा सकता है, जो इस गहन नयचक्रके समूहका प्रकाश लिए हुए घूम रहा हो। तो यहाँ तीन बातें समझनी चाहिएं व्यवहारनय, निश्चयनय और स्वात्मानुभूति। इसमें साधक साध्यपनेका सम्बन्ध भी है। व्यवहारनय साधक है तो निश्चयनय साध्य है। निश्चयनय साधक है तो स्वात्मानुभूति साध्य है। स्वात्मानुभूतिमें स्व समयता है और नयोंमें पर समयता है और विशुद्ध दृष्टि रखते हुए, प्रयोजन ठीक समझते हुए निरखनेपर तो नय भी सम्यक है। इस तरह शिक्षाके लिए यह बात प्रकट होती है कि मनुष्यको कल्याण मार्गमें बढ़नेके लिए व्यवहारनयका सहारा लेकर वस्तु स्वरूपका अध्ययन करना चाहिए और फिर व्यवहारनयका प्रयोजन जानकर दृष्टि निश्चयनके विषयकी ओर उन्मुख करना चाहिए, फिर निश्चयनयके आलम्बनसे अखण्ड वस्तुको निरखना चाहिए और फिर इस विकल्प से भी हटाकर स्वात्मानुभूतिमें आकर वह विशुद्ध निर्विकल्प अनुभव रहे उसका बस यही कल्याणका सीधा मार्ग है।

स यथा सति सद्विकल्पे भवति स निश्चयनयो निषेधात्मा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न विकल्पो न निषेधो भवति चिदात्मानुभूतिमात्रं च ।।६४८।।

अनुभूतिकी विकल्पातिक्रान्तताका निर्देशन इस गाथामें स्वात्मानुभूति का स्वरूप कहा गया पर स्वात्मानुभूति वहाँ है जहाँ कोई विकल्प भी नहीं है। न तो विधिरूप विकल्प है और न निषेधरूप विकल्प है। सविकल्प ज्ञान होनेपर निश्चयनय में विकल्पका निषेध करते हैं परन्तु निश्चयनयमें भी निषेधरूपका पक्ष रह जाता है। जब यह पक्ष भी शान्त हो जाता है तो वहाँ जो अनुभव है वह आत्माके अनुभव मात्र हैं और उसे ही स्वानुभव कहते हैं। अथवा स्वका अर्थ यहाँ ज्ञान है, क्योंकि आत्मा ज्ञानमात्र है, अर्थात् केवल ज्ञानस्वरूपसे ही निरखा जाय तो आत्माका ठीक परिचय हो जाता। ऐसे ज्ञानमात्र निज आत्मतत्त्वका अनुभव करना सो ज्ञानानुभूति अथवा स्वात्मानुभूति है। ज्ञानमें जब विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप समाया हो, ज्ञान जहाँ विशुद्ध ज्ञानका स्वरूप मात्र जान रहा हो, उसके साथ इष्ट अनिष्ट विकल्प न हो, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयका भेद न हो, मैं की पद्धतिसे अपने आपमें भी भेद न किया जा रहा हो, ऐसे अभेद ज्ञानानुभवका आनन्द चखा जानेकी जो स्थिति हो उसे स्वात्मानुभूति की स्थिति कहते हैं। स्वात्मानुभव ही एक ऐसा विशुद्ध पुरुषार्थ है कि जिसके प्रतापसे यह जीव निर्वाण पदको प्राप्त कर लेता है, ऐसा स्वात्मानुभव जहाँ हो वहाँ सम्यग दर्शन कहलाता है। जब तक व्यवहारनय अथवा निश्चयनयका विकल्प है तब तक वहाँ सम्यग्दर्शन नहीं कहा जाता। यद्यपि सम्यग्दृष्टि पुरुष भी व्यवहारनय और निश्चयनयकी पद्धतिसे जानते हैं लेकिन मिथ्यादृष्टि जीव व्यवहारनय और निश्चयनयकी पद्धतिसे जानता है। तब वहाँ नियमपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि व्यवहारनयके विकल्प और निश्चयनयके विकल्प करने वाले जीव भी सम्यग्दृष्टि होते हैं और जब केवल मात्र विकल्पके स्वरूपके स्वरूप तक ही कुछ चर्चा चलती है तो वहाँ तो कहना ही होगा कि यह सम्यग्दर्शन नहीं है।

दृष्टान्तोपि च महिषध्यानाविष्टो यथा हि कोपि नरः।
महिषोयमहं तस्योपासक इति नयावलम्बी स्यात् ।।६४९।।

चिरमचिरं वा यावत् स एव दैवात् स्वयं हि महिषात्मा।
महिषस्यैकस्य यथा भवनान् महिषानुभूतिमात्रं स्यात् ।।६५०।।

अनुभूतिकी विकल्पातिक्रान्तताका दृष्टान्तपूर्वक समर्थन—उक्त गाथामें स्वानुभूतिका स्वरूप बताया है। स्वानुभूतिकी पूर्व स्थिति क्या होती है और स्वानुभूतिके समय क्या स्थिति होती है उस स्थितिका चित्रण करनेके लिए एक पद्धति रूप का दिग्दर्शन उस दृष्टान्त द्वारा इस गाथामें कराया गया है। जैसे कोई पुरुष भैंसाके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ध्यानमें आरूढ़ है, कुछ लोगोंके धर्मशास्त्रोंमें भैंसाका ध्यान करना, गधेका ध्यान करना आदिक बताया गया है उसके अनुसार कोई पुरुष भैंसाका ध्यान करने बैठ गया तो ध्यान करते हुएमें यह समझ रहा है कि यह भैंसा है और मैं इसकी सेवा करने वाला हूं मैं ध्यान करने वाला हूं। पहिले उसको द्वैतका विकल्प होता है, इस प्रकारके विकल्पको लिए हुए जब तक उसका ज्ञान चल रहा है तब तक यों समझिये कि जैसे वह नयका अवलम्बन करने वाला है। अब बारबार भैंसा जैसा अपने आपको उपासित करनेके लिए ध्यान करने लगा, और इस तरहसे महिषका ध्यान करने लगे कि उस ओर एकाग्रचित हो गया। अब योगवश उसकी बुद्धिमें यह न रहा कि यह भैंसा है और मैं उसकी उपासना कर रहा हूं और उस समय वह स्वयं अपने अनुभवमें, उपयोगमें महिषरूप बन जाता है, लेकिन उस समय वह स्वयं अपने अनुभवमें, उपयोगमें महिषरूप बन जाता है लेकिन उस समय केवल एक भैंसेकी ही अनुभूति करता है, उसे कह सकते हैं कि अब इसको महिषकी अनुभूति हुई है। यहाँ दो स्थितियोंपर दृष्टि कराई गई है कि भैंसेका ध्यान करने वाला पुरुष जब तक इस तरहका विकल्प रख रहा है कि यह भैंसा है और मैं उसका उपासक हूं तब तक तो समझिये कि वह विकल्पात्मक नयके आधीन है और ध्यान करते करते जिस समय उस उपासकके दिल से यह विकल्प दूर हो जाता है और केवल अपने आपको भसारूप अनुभव करने लगता है उस ही समय उसके महिषानुभूति हुई यह समझना चाहिए। अब इस अनुभूतिमें उपास्य उपासकका भेद न रहा। यह भैंसा है, इसकी उपासना करनी चाहिए यह पूजनेके योग्य है। मैं उपासना करने वाला हूं, इस प्रकारका अब भेद न रहा। पहले तो भेद था और ध्येय बनाया था महिषको। तो जैसे पहिले ध्येय बनाया था और आप उसका ध्याता बन रहा था अब अनुभूतिके समय ध्याता ध्येयका विकल्प भेद न रहा, किन्तु यह ध्याता स्वयं ही ध्येयरूप बनकर तन्मय हो गया। तो यह पद्धति स्वात्मानुभूतिकी है इसी कारण स्वात्मानुभूतिकी एक बड़ी महिमा गाई गई है। अब उक्त दृष्टान्तके अनुसार प्रकृत दृष्टान्तकी बात कह रहे हैं।

स्वात्मध्यानाविष्टस्तथेह कश्चिन्नरोपि किल यावत्।
अयमहमात्मा स्वयमिति स्यामनुभविताहमस्य नयपक्षः ।६५१।

चिरमचिरं वा दैवात् स एव यदि निर्विकल्पश्च स्यात्।
स्वयमात्मेत्यनुभवतात् स्यादियमात्मानुभूतिरिह तावत् ।६५२।

अनुभूतिकी पक्षातिक्रान्तताका दार्ष्टान्तिमें विवरण—कोई मनुष्य जब अपने आत्माके ध्यानमें आरूढ़ होता है तो ध्यान करते हुए यह विकल्प रहता है कि मैं यह आत्मा हूं और मैं स्वयं इस आत्माका ध्यान करने वाला हूं। जैसे कि महिष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का ध्यान करने वाले पुरुषने ध्येयको अलग रखा तो वहाँ यद्यपि अलग अलग दो पदार्थ हैं ध्येयरूप महिष भिन्न है और ध्याता यह पुरुष भिन्न है, परन्तु इस आत्मामें जिस आत्माका ध्यान करना है वह भी स्वयं है और जो ध्यान करने वाला है वह भी स्वयं है लेकिन अभी भेद भावमें पड़ा हुआ है। जो ध्याता बन रहा वह तो एक उपयोग है, ज्ञान है और जिसको ध्येय बनाया जा रहा वह अनन्त शक्त्यात्मक आत्मतत्त्व है। तो ध्याताके ज्ञानके प्रकारके ही कारण अभी यहाँ विकल्प पड़ा हुआ है। यह मैं आत्मा हूं और मैं इसका ध्यान कर रहा हूं। तो समझिये ! कि जब तक उसका ऐसा विकल्पात्मक बोध है तब तक उसका नयपक्ष है। है नयपक्ष फिर भी यह पद्धति निरन्तर चलती है—यह मैं ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूँ। इस प्रकारका ध्यान बराबर करता जा रहा है। तो इसके चिर अभ्याससे योगवश जब यही आत्मा निर्विकल्प हो जाता है अर्थात् पहिले जो विकल्प किया जा रहा था कि मैं उपासक हूं और यह मैं स्वयं उपास्य हूं, ऐसा जो विकल्प था उसको दूरकर जब यह आत्मा स्वयं निज आत्मामें तन्मय हो जाता है तो उस समय यह आत्मा स्वात्मानुभव करने लगता है। इस स्थितिमें जब कि ध्याता और ध्येयका विकल्प भेद न हो और जो निर्विकल्प अनुभव है वही स्वात्मानुभूति कहलाती है। यहाँ भी दो स्थितियोंका परिज्ञान करना कि स्वात्मानुभव करने वाले इस पुरुषने पहिले तो ध्याता ध्येयका विकल्प रखा था और तब तक यह नयपक्षमें था, जब इसके ध्याता ध्येयका विकल्प भी छूटा और स्वयं निर्विकल्प स्वके अनुभव में आ गया, कोई विकल्प ही न रहा, एक ज्ञान मात्र तत्त्वका ही शुद्ध जानन चलता रहा ऐसी स्थितिको स्वात्मानुभूति कहते हैं। यह है निर्विकल्प स्थिति। इस स्थितिमें ध्यान ध्याता ध्येयका विकल्प नहीं रहता। स्वानुभवमें यह तरङ्ग नहीं है। ध्यान क्या है। ध्याता कौन है, ध्येय कौन है, न ऐसा विकल्प है और न ऐसा कोई जल्प है, प्रकृतमें वह बात फलित रूपसे समझना चाहिए कि निश्चयनय में भी विकल्प है और वह विकल्प भी जब छूट जाता है तो व्यवहार और निश्चय दोनों विकल्पोंसे रहित होता हुआ यह जीव स्वानुभूति वाला होता है। तो यह स्वात्मानुभूतिरूप विज्ञान निश्चयनयसे बहुत ऊपर है और बहुत सूक्ष्म है। इसका वर्णन बड़े महंत ऋषिजन कर पाते हैं। उस आनन्दका जिन्हें अनुभव नहीं हुआ वे उसका यथार्थ स्वरूप नहीं कह सकते हैं। तो अब यहाँ यह निश्चय कर लेना चाहिए कि जो यह कथन किया गया है कि मात्र व्यवहारनयका आलम्बन करने वाला जैसे मिथ्यादृष्टि है इसी प्रकार मात्र निश्चयनयका आलम्बन करने वाला भी मिथ्यादृष्टि है।

तस्याद्व्यवहार इव प्रकृतो आत्मानुभूतिहेतुः स्यात्।
अयमहमस्य स्वामी सदवश्यम्भाविनो विकल्पत्वात् ॥६५३॥

व्यवहारनयकी तरह निश्चयनयके पक्षमें भी आत्मानुभूति हेतुताका

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रभाव—उक्त कथनके सारांशरूपमें इस गाथामें यह बताया जा रहा है कि जब व्यवहारनय भी एक विकल्परूप है और निश्चयनय भी विकल्परूप है तब जैसे, व्यवहारनय आत्मानुभूतिका कारण नहीं है इसी प्रकार निश्चयनय भी आत्मानुभूतिका कारण नहीं है, क्योंकि निश्चयनयमें भी यह विकल्प उठ रहा है कि यह आत्मा है और मैं इसका स्वामी हूं किसी भी प्रकारका विकल्प हो तो वह विकल्प आत्मानुभूतिकी स्थिति नहीं है। हाँ आत्मानुभूतिके लायक भूमिका बनाया ऐसा निश्चयनयका प्रयास है। तब यहाँ तीन स्थितियाँ समझना चाहिए। एक तो व्यवहारनयकी अनेक विकल्प की स्थिति, दूसरी व्यवहारके निषेध करनेरूप निश्चयनयकी विकल्पात्मक स्थिति और तीसरी स्थिति है व्यवहार और निश्चयके विकल्पसे परे होकर निर्विकल्प निजज्ञान मात्रकी अनुभूति। तो इस स्थलमें यह शिक्षा मिलती है कि हमको व्यवहारनयका आलम्बन लेकर वस्तु स्वरूपका अध्ययन करना चाहिए और उससे निश्चयनयके विषय का संकेत पाकर निश्चयनयके विषयपर दृष्टि रखना चाहिए और ऐसा करते हुएकी स्थितिमें रागवश जब सहज निश्चयनयका विकल्प भी छूटकर निर्विकल्प स्थिति हो जाय तो वह निर्विकल्प स्वात्मानुभूति अलौकिक शाश्वत आनन्दको प्रदान करने वाली होती है।

ननु केवलमिह निश्चयनयपक्षो यदि विवक्षितो भवति।
व्यवहारान्निरपेक्षो भवति तदात्मानुभूतिहेतुः सः ॥६५४॥

व्यवहारनयनिरपेक्ष निश्चयनयमें आत्मानुभूति हेतुताकी आशंका—अब यहाँ शङ्काकार पुनः कहता है कि यदि हम यहाँपर केवल निश्चयनय पक्षको ही विवक्षित करें अर्थात् व्यवहारनयकी अपेक्षा न रखकर केवल निश्चयनयके विषयपर ही दृष्टि बनायें तो यह स्थिति क्या आत्मानुभूतिका कारण हो जायगी? शङ्काकार के चित्तमें आत्मानुभूतिका महत्त्व तो बैठा हुआ है तभी उसके लाभके लिए जिज्ञासा बन रही है और वह स्थिति निर्विकल्प प्रतीत भी होती है। तो विकल्पका निषेध करने वाले निश्चयनयके उपायसे ऐसी आत्मानुभूतिका मिलना सहज है, ऐसी समझ भी उसकी बन रही है। जिस आधार पर वे यहाँ अपनी जिज्ञासा रख रहे हैं कि व्यवहारसे निरपेक्ष होकर यदि केवल निश्चयपक्ष ही विवक्षित रखा जाय तो भी क्या आत्मानुभवका कारण हो जायगा? अब इस जिज्ञासाके समाधानमें कहते हैं।

नैवमसंभवदोषाद्यतो न कश्चिन्नयो हि निरपेक्षः।
सति च विधौ प्रतिषेधः प्रतिषेधे सति विधेः प्रसिद्धत्वात् ॥६५५॥

नयोंमें निरपेक्षता न होनेसे उक्त आशंकाका अनवकाश—उक्त गाथामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बताई हुई जिज्ञासाका समाधान दिया जा रहा है कि शङ्काकारने जो पूछा है कि व्यवहारनयसे निरपेक्ष होता हुआ निश्चयनयका पक्ष आत्मानुभूतिका कारण हो सकेगा क्या ? तो उसकी शङ्का यों ठीक नहीं है कि निरपेक्ष पद्धतिसे नयोंका प्रयोग करके आत्महितकी बात निकाले तो वह असम्भव है। इसका कारण यह है कि कोई भी नय निरपेक्ष नहीं हुआ करता। यदि निरपेक्ष विधिसे नयका प्रयोग किया जाय तो वह मिथ्यानय होगा, नयाभास होगा। यदि सम्यक पद्धतिसे नयोंका प्रयोग हो तो वह प्रयोग सापेक्ष ही हो सकेगा। देखिये ! विधिके होनेपर प्रतिषेधका होना भी अवश्यंभावी है। जहाँ विधि है वहाँ विधि है, जहाँ प्रतिषेध होगा वहाँ विधि है। नय तो वस्तुके किसी विशेष अंशको विषय करने वाला होता है, इस कारणसे नय एक विवक्षित अंशका ही विवेचन करता है, तो विवक्षित अंशका विवेचन करता हुआ दूसरे अंशकी अपेक्षा न रखे तो वह नयज्ञान सम्यक न होगा। उसे नय ही न कह सकेंगे। तो जब व्यवहारनयका प्रयोग किया जा रहा है तो व्यवहारनयमें तो विधि विषय है। तो मुख्यतासे तो विधिका कथन हो रहा है। वहाँ निश्चयनयकी अपेक्षा रखता हुआ ज्ञानी व्यवहारनयका प्रयोग कर रहा है और जब प्रतिषेधकी विवक्षा की जा रही हो तो मुख्य तो प्रतिषेध विषय है पर प्रतिषेधका बोध करने वाला ज्ञानी विधिकी भी अपेक्षा कर रहा है, इस कारण व्यवहारनय और निश्चयनय इन दोनोंमें परस्पर सापेक्षता है, अतः निरपेक्षता बताकर नयको आत्मानुभूतिका कारण बताना सङ्गत नहीं है।

ननु च व्यवहारनयो भवति यथाऽनेक एव सांशत्वात् ।
अपि निश्चयो नयः किल तद्वदनेकोऽथ चैकशस्विति चेत् ॥६५६॥

व्यवहारनयकी भांति निश्चयनयको भी एक एक मिलाकर अनेक मान लेनेकी आशंका—यहाँ शङ्काकार कहता है कि व्यवहारनय अनेक हैं क्योंकि वे अंशसहित हैं, ऐसा जो बताया है वह ठीक है। अब यह भी देखिये कि जैसे व्यवहारनय अनेक हैं यों ही निश्चयनय भी तो एक एक मिलकर अनेक बन जायेंगे। तो निश्चयनयको भी अनेक स्वीकार किए जानेमें क्या दोष है ? तब व्यवहारनयकी भांति निश्चयनय भी अनेक सिद्ध हो जाते हैं। जैसे व्यवहारनय विकल्पात्मक है इसी प्रकार निश्चयनय भी विकल्पात्मक है, यह तो माना ही गया है। व्यवहारनयमें विधिका विकल्प है तो निश्चयनयमें निषेधका विकल्प है। तो जैसे विकल्पात्मकताके रूपसे व्यवहारनय और निश्चयनय समान हैं इसी प्रकार अनेकात्मकताके रूपसे भी व्यवहार और निश्चय समान होंगे। और भी परखिये ! व्यवहारनय वस्तुके अंशको ग्रहण करता है, निश्चयनय भी वस्तुके अंशको ग्रहण करता है। तो अंशग्राह्यता होनेसे जैसे दोनों नय समान हैं ऐसे ही दोनों नय अनेकरूप भी बनकर समान हो जायें तथा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निश्चयनय पक्षग्राही है और व्यवहारनय भी पक्षग्राही है। तो पक्षग्राह्यताकी दृष्टिसे जैसे दोनों नय समान हैं, उसी प्रकार अनेकरूपतासे भी दोनोंकी समानता कहियेगा। तो यों व्यवहारनयकी भांति निश्चयनयको भी अनेक मान लिया जाना चाहिए। अब इस शङ्काका समाधान करते हैं।

नैवं यतोस्त्यनेको नैकः प्रथमोप्यनन्तधर्मत्वात ।
न तथेति लक्षणत्वादस्त्येको निश्चयो हि नानेकः ॥ ६५७ ॥

न तथेति लक्षण होनेसे निश्चयनयमें अनेकताकी अनापत्ति—उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि शङ्काकारका यह भाव कि जैसे व्यवहारनय सांश होनेसे अनेक है, इसी प्रकार निश्चयनय भी एक एक मिलकर अनेक होजायगा। यह बात यों सङ्गत नहीं है कि व्यवहारनय तो अनन्तधर्मात्मक है, उसमें अनेक विधियां पड़ी हुई हैं इस कारण व्यवहारनय अनेक हैं। परन्तु निश्चयनय अनेक नहीं है, क्योंकि निश्चयनयका लक्षण न तथा अर्थात् जैसा व्यवहारनय कहता है वैसा वस्तुतः नहीं है। इस तरह निषेध निश्चयात्मकका विषय है और निषेधमें आता है अभाव तो अभाव सब एक रूप है इस कारण कितने ही धर्मोंके बिवेचन क्यों न किए जायें, जब निश्चयनयके द्वारा उन सबका निषेध किया जा रहा है तो निषेध करना मात्र निश्चयनयका कार्य हुआ इस कारणसे निश्चयनय अनेक नहीं हो सकता किन्तु वह एक है। सर्व प्रकारकी व्यवहार विधियोंका निषेध भी एक है और प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें जो निश्चयनय आता है वह सब निषेधरूप है। तो सबका निषेध जोड़कर भी कहीं निषेधोंकी संख्या बढ नहीं जाती। अतः निषेध विषय एक है तथा निषेध करके जो तत्त्व लक्ष्यमें लिया गया है या जिस तत्त्वको लक्ष्यमें रखते हुए निषेध किया जा रहा है व्यवहारका वह विषय भी एक अखण्ड है, इस कारण निश्चयनयको अनेक नहीं कह सकते।

संदृष्टिः कनकत्वं ताम्रोपाधेर्निवृत्तितो यादृक् ।
अपरं तदपरमिह वा रुक्मोपाधेर्निवृत्तिवस्तादृक् ॥६५८॥

दृष्टान्त पूर्वक निश्चयनयकी एकताका प्रतिपादन—उक्त समाधानमें यह कहा गया है कि निश्चयनय एक है, इसका कारण इस गाथामें बताया जा रहा है और उसके विवरणके लिए दृष्टान्त दिया जा रहा है। जैसे किसी सोनेमें ताँबा मिला है, किसी सोनेमें चाँदी मिली है, किसी सोनेमें अन्य धातु मिली है, जब उस उपाधिको दूर कर दिया जाता है अर्थात् प्रयोग द्वारा ताँबा, पीतल, चाँदी आदिको उस सोनासे अलग कर दिया जाता है तो हुआ क्या वहाँ ? उस मिश्रित धातुकी तो निवृत्ति हुई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और खालिस स्वर्ण रह गया। तो जैसे सोनेके डलेमें चाँदीका सम्बन्ध बना है उसे प्रयोग विधिसे अगर अलग कर दिया तो चाँदी उपाधिकी निवृत्ति हो गई। उस उपाधिकी निवृत्ति होनेसे वहाँ स्वर्णत्व शुद्ध प्रकट हो गया। तो वहाँ निवृत्तिमें भेद नहीं है। और जो प्रकट हुआ है उसमें भेद नहीं। सोना तांबेकी उपाधिकी निवृत्तिमें जिस प्रकार है उस ही प्रकार चाँदीकी उपाधि दूर होनेसे सोनेमें जो ताँबा, पीतल, चाँदी आदिक उपाधियाँ हैं वे उपाधियाँ तो अनेक हैं परन्तु उनका अभाव होना अनेक नहीं है। अभाव सदभावात्मक होता है। उन सब उपाधियोंका अभाव हुआ तो सद-भाव क्या मिला? केवल सोना। तो किसी भी उपाधिका अभाव क्यों न हो, वह एक अभाव रहेगा, अर्थात् वस्तुका शुद्ध सद्भाव रहेगा। प्रत्येक उपाधिकी निवृत्तिमें स्वर्ण तो स्वर्ण ही रहेगा, इसी प्रकार समझ लेना चाहिए कि किसी वस्तुके स्वरूपका वर्णन करनेके लिए व्यवहारनयका प्रयोग किया गया तो उस व्यवहारनयमें अनेक प्रकारसे भेदका वर्णन होगा। तो वह भेद कथन तो नाना रूपोंसे है अतएव व्यवहार अनेक है. पर भेदकी निवृत्ति, भेदका निषेध तो एक निषेधात्मक है और उसका निषेध करके जो लक्ष्यमें रहा है वह भी एक रूप है इस कारणसे निश्चयनयको अनेक नहीं कहा जा सकता। अनेक तो व्यवहारनय ही हो सकेगा।

एतेन हतास्ते ये स्वात्मप्रज्ञापराधतः केचित्।
अप्येकनिश्चयनयमनेकमिति सेवयन्ति यथा ॥६५६॥

निश्चयनयके अनेकत्वके प्रतिपादनकी असंगतता—उक्त कथनसे उन दोनोंका यह आशय खण्डित हो जाता है जो पुरुष अपने ज्ञानके दोषसे निश्चयनयको अनेक समझता है। यद्यपि अपेक्षा विधिसे निश्चयनयके भी अनेक भेद किए गए हैं, लेकिन निश्चयनय इस रूप रहे ऐसा उन सबमें नहीं पाया जाता। स्वाश्रित वर्णनसे निश्चयनयका लक्षण उन अनेक प्रकारके निश्चयनयोंमें घटित हो जाता है, पर निश्-चयनय ही रहे कभी वह व्यवहारनयका रूप न ले सके ऐसी बात बताई गई सर्व निश्चयनयके भेदमें नहीं है, किन्तु एक परम शुद्ध निश्चयनयमें ही है। निश्चयनय भी अन्तर्दृष्टिके मिलनेपर व्यवहारनय बन जाता है। इसी लक्ष्यको लेकर यह बात कही जा रही है कि जो कभी व्यवहारका रूप ही न बिगड़ सके ऐसा निश्चयनय अनेक नहीं होता, किन्तु वह एक है। जो निश्चयनयको अनेक समझते हैं उन्हें वस्तुके अखण्ड तत्त्वका परिज्ञान नहीं है। निश्चयनयके अनेक भेद करके भी इतना यदि बोध रहे कि यह कभी व्यवहारनय न बन सकेगा। निश्चयनय ही रहेगा और यह व्यवहार बन जायगा, यह सदा निश्चय रूप न रहेगा। ऐसा परिज्ञान हो तब तो वहाँ बोध ठीक है लेकिन निश्चयनय ही है और अनेक प्रकारके हैं ऐसा परिचय वस्तु स्वरूप के अनुरूप नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुद्धद्रव्यार्थिक इति स्यादेकः शुद्धनिश्चयो नाम ।
अपरोऽशुद्धद्रव्यार्थिक इति तदशुद्धनिश्चयो नाम ॥ ६६० ॥

इत्यादिकाश्च बहवो भेदा निश्चयनयस्य यस्य मते ।
सहि मिथ्यादृष्टित्वात् सर्वज्ञाज्ञानमानितो नियमात् ॥ ६६१ ॥

निश्चयनयके भेदोंके कथनकी मिथ्यारूपता― कोई लोग निश्चयनयके इस प्रकार अनेक भेद करते हैं। जैसे एक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय व शुद्ध निश्चयनय कहलाता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका अर्थ किया जाता है उपाधिरहित शुद्ध द्रव्य जिस नयका विषय है वह आशयमें यद्यपि शुद्ध द्रव्यको विषय किया गया है किन्तु शुद्ध निर्मल पर्याय परिणत शुद्ध द्रव्यको देखा है तो वहाँ अभेद न रहा, इस कारण निश्चयनयके विशुद्ध लक्षणका अवकाश न रहा फिर भी निश्चयनय कहा जा रहा है यद्यपि स्वाश्रित वर्णन किया जा रहा है अर्थात् किसी भी पर पदार्थका उपचार सम्बन्ध लेकर वर्णन नहीं है उस ही द्रव्यको उस ही द्रव्यमें उसकी शुद्धता बताई जा रही है अतएव निश्चयनयका लक्षण घटित हो गया, किन्तु जो निश्चयनय कभी व्यवहार न बन सके इस प्रकारके निश्चयनयका लक्षण नहीं गया, फिर भी भेद कर रहे हैं और निश्चयनयको अनेक बता रहे हैं। कोई पुरुष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयको अशुद्ध निश्चयनय कहता है। इस दृष्टिमें क्रोधादिक विकार परिणत द्रव्यको विषय किया गया है। यहाँ भी वर्णन स्वाश्रित है। कर्मसे विकार नहीं आया, कर्मका विकार नहीं है आदिक रूपसे परका निषेध है, परका आश्रय नहीं लिया गया है। स्वयंके द्रव्यमें स्वयंकी बात कही जा रही है। चाहे वह विकार भी है अतएव निश्चय नयका सामान्य लक्षण घटित हो गया किन्तु जो निश्चयनय कभी व्यवहारका रूप न पकड़ सके वह अभेद वाला लक्षण नहीं गया, फिर भी इसे निश्चयनय कहा जारहा है और उसके अनेक भेद किए जा रहे हैं। इसी प्रकार और भी बहुतसे भेद जिनके मतमें है उनका आशय निश्चयनयके परम लक्षणकी दृष्टिसे मिथ्या है और वह सर्वज्ञ की आज्ञाका उल्लंघन करने वाला है। निश्चयनयके वास्तवमें शुद्ध अशुद्ध आदिक कोई भेद नहीं होते, यह तो केवल निषेधात्मक है फिर भी उसके कोई भेद करे तो सर्वज्ञकी आज्ञाका उल्लंघन करने वाला है। अतएव उसकी दृष्टि मिथ्या है। निश्चय को स्वसमयकी अपेक्षासे निरखनेपर शुद्ध अशुद्ध आदिक भेद न होंगे, किन्तु ये सब भेद व्यवहारनयमें गर्भित होंगे। क्रोधादिक भाव अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे आत्माके हैं, यह कथन यद्यपि असत्य नहीं है तो भी यहाँ भेद आ गया इस कारणसे निश्चयनय नहीं है। यह निश्चयनयकी प्रकृति लक्षणकी दृष्टिसे निश्चयनयसे बहिर्भूत है, व्यवहारनयमें गर्भित । इसी प्रकार आत्माके ज्ञान दर्शन आदिक गुण हैं यों भेद सापेक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कल्पना भी अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे बनाई गई है अथवा रागादिक भावोंका कर्ता जीव है, यह भी अशुद्ध निश्चयनयसे कहा गया है। तो चूंकि स्वाश्रित वर्णन किया जा रहा इस कारण निश्चयनय भले ही इसमें माना जाय, लेकिन भेद हटनेसे यह सब व्यवहारनयमें गर्भित हो जाता है। यों निश्चयनयकी प्रकृतिसे यह बहिर्भूत है। अतएव यह कोई भी निश्चयनय वास्तवमें निश्चयनय नहीं है किन्तु व्यवहारनय है। यों निश्चयनय अनेक नहीं हुआ करते।

इदमत्र तु तात्पर्यमधिगन्तव्यं चिदादि यद्वस्तु।
व्यवहारनिश्चयाभ्यामविरुद्धं यथात्मशुद्ध्यर्थम् ॥ ६६२ ॥

व्यवहारनय व निश्चयनय द्वारा अविरुद्ध रीतिसे परिज्ञात जीवादि पदार्थोंकी आत्मशुद्धिके लिये उपयुक्तता—नयोंका यहां तक कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है और जिस पद्धतिसे वर्णन किया गया है उस पद्धतिसे हमको यह आदेश मिलता है कि यहाँ इन सब वर्णनोंका यह तात्पर्य जानना कि जीवादिक जो तत्त्व हैं, पदार्थ हैं वे आत्मशुद्धिके लिए तभी उपयुक्त हो सकते हैं जबकि ये सब पदार्थ व्यवहारनय और निश्चयनयके द्वारा अविरुद्ध रीतिसे जाने जाते हैं। व्यवहारनयसे समझा निश्चयनयकी ओर जानेके लिए और जिस भेद पद्धतिसे समझा वह भेद मिटाने के लिए। निश्चयनयने समझा निश्चयनयका विकल्प भी मेटकर निर्विकल्प अनुभूति पानेके लिए। तो इन नयोंसे हम जो परिज्ञान करते हैं उसका सही-सही प्रयोजन भी हमारी दृष्टिमें रहे तो उससे हम आत्महितकी साधना सहज ही कर सकते हैं और आत्मसाधनाके लिए यह नयोंका परिचय होना और सही पद्धतिसे नयोंका प्रयोग करना आवश्यक था, इस कारण यहाँ इन सब नयोंका वर्णन किया गया है।

अपि निश्चयस्य नियतं हेतुः सामान्यमात्रमिह वस्तु।
फलमात्मसिद्धिः स्यात् कर्मकलंकावमुक्तबोधात्मा ॥ ६६३ ॥

निश्चयनयके विषय और फलका प्रतिपादन—निश्चयनयका कारण क्या है? और निश्चयनयका फल क्या है अर्थात् निश्चयनयके प्रयोगसे आत्माकी क्या स्थिति बनती है? इन सब बातोंका वर्णन इस गाथामें किया गया है। निश्चयनयका नियत हेतु सामान्य मात्र वस्तु है। वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। उसमें सामान्यतत्त्व को मुख्य लक्ष्यमें लेकर जो एक अभेद दृष्टि बनती है वह अभेद दृष्टि यह जता रही है कि ऐसी दृष्टि होनेका कारण है सामान्य मात्र वस्तु। तो सामान्यमात्र वस्तुके विषय करने वाले निश्चयनयके प्रयोगसे फल क्या मिलता है? वह फल है आत्मशुद्धि! आत्माका अखण्ड सामान्य स्वरूप जानें। उस अवगममें विकल्प टूटकर निर्विकल्पता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आनेका अवसर है। तो उसका फल इस प्रकार निर्विकल्प आत्मतत्त्वकी अनुभूति है। यों निश्चयनयसे वस्तुका बोध करनेपर यह आत्मा स्वात्मानुभूतिमें प्रवेश करता है और स्वात्मानुभूतिकी निरन्तरतासे यह आत्मा सर्व कर्म कलङ्कोंसे मुक्त परिपूर्ण ज्ञानानन्दमय हो जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com